अमर जैन साहित्य संस्थान का १:

प्रेरणा के बिन्दु

लेखक

गणेश मुनि, शास्त्री

सम्पादक :

श्रीचन्द सुराना 'सरस'

प्रकाशक :

अ म र जै न सा हि त्य सं स्था न

उ द य पु र [रा ज स्था न]

पुस्तक ☼ प्रेरणा के बिन्दु

लेखक ☼ गणेश मुनि शास्त्री, साहित्यरत्न

प्रेरक ☼ जिनेन्द्रमुनि सा. वि. शास्त्री

संपादक ☼ श्रीचन्द सुराना 'सरस'

प्रकाशक ☼ राजेन्द्र कुमार मेहता

मंत्री : अमर जैन साहित्य संस्थान

कोरपोल, बड़ा बाजार, उदयपुर [राज.]

अर्थ सहयोग ☼ रसिकलाल माणिकचन्द जैन

घोड़नदी-पूना [महाराष्ट्र]

प्रथम संस्करण ☼ रक्षाबन्धन १९७२

मूल्य ☼ तीन रुपया

मुद्रक ☼ संजय साहित्य संगम के लिए

☼ श्याम सुन्दर शर्मा

श्री प्रिन्टर्स, २९/१५८ राजामण्डी, आगरा-२

प्रस्तुत पुस्तक के अर्थ सहयोगी

● ●

सुप्रसिद्ध उद्योगपति श्रीयुत सन्माननीय रसिकलाल
माणिक चन्द जैन, धारीवाल
घोडनदी-पूना [महाराष्ट्र]

जिनका चिन्तन—

पंथ, सम्प्रदाय व मज़हब की

दिवारों को लांघ कर

विश्वकल्याण के अभियान में

निरंतर गतिशील है,

बस,

उन्हीं प्रबुद्ध चिन्तकों को !

जब-जब मैं स्वाध्याय करता हूं, अध्ययन, मनन और चिन्तन करता हूं तो अनायास ही कुछ ऐसा विशेष तथ्य हाथ लग जाता है, जिसमे कुछ अद्‌भुत प्रेरणा, स्फुरणा और हृदय को उत्तरंगित करने की क्षमता होती है। उस तथ्य को रत्न की तरह सहेज लेता हू, पुष्प की तरह विचारमाला मे गूंथ लेता हूं। उस पर बार-बार चिन्तन-मनन करता हूँ तो लगता है वामन मे से विराट प्रगट हो रहा है, छोटे से विचार कण मे से अद्‌भुत प्रकाश-पुरुष जन्म ले रहा है। मैं उस तथ्य को, विचार कण को भावना और कल्पना का परिवेश देकर, शब्दों का रग-रूप देकर लेखाकार कर देता हूँ—यह मेरी आदत है, चाहे शौक कहे, रुचि या हॉबी कहे या लाचारी !

खोजने वाले को रत्न मिलता है, स्वाध्याय करने वाले को सत्य मिलता है, मनन करने वाले को ज्ञान मिलता है, बाहर से भीतर मे देखने वाले को अनुभव मिलता है, बाह्य दृष्टि मूँदकर सोचने वाले को अन्तर्दृष्टि मिलती है, अन्धकार की ओर पीठ कर प्रकाश की ओर चलने वाले को ज्योति मिलती है, निष्ठा के

मार्ग यात्रा करने वाले को अपनी मंजिल मिलती है, इसी प्रकार हर वस्तु को, हर कोण को, व हर तथ्य को देखने-परखने वाले को उससे कुछ न कुछ प्रेरणा मिलती है—ऐसा मेरा विश्वास बना है, अनुभव की भूमिका पर विश्वास गलत है, ऐसा लगता है।

'प्रेरणा के बिन्दु' मे और क्या है ? वस्तु को देखने की एक अन्तर्दृष्टि है, सत्य मे से शिव और सुन्दर की खोज का एक प्रयत्न है। अध्ययन मे से एक अन्तःस्फुरित भावना है। जिन-जिन घटनाओं, तथ्यों व आदर्शों से मेरे अन्तःकरण मे स्फुरणा जगी, भावना तरंगित हुई उन्हें शब्दो का रूप देने को बुद्धि लालायित हो गई और एक लघु पुस्तक का रूप बन गया। यह संकलन मेरे कई स्नेही मुनिवरों ने देखा, कई भावनाशील सद्गृहस्थों ने देखा—उन्हें रुचिकर लगा, प्रेरणादायी लगा तो इसके प्रकाशन की प्रेरणा मिलने लगी।

जब हम बम्बई थे, तभी यह पुस्तक तैयार हो गई थी, वहाँ के गुजराती भाषी बन्धुओं ने इसके गुजराती संस्करण की माग की और उनके आग्रह पर हिन्दी की यह पुस्तक हिन्दी में छपने से पहले ही अनूदित होकर गुजराती मे प्रकाशित हो गई। अब हिन्दी में प्रकाशित हो रही है।

भी मिला है, और मेरे स्नेही गुरुभाई प० श्री हीरामुनिजी म० एवं श्री देवेन्द्र मुनिजी शास्त्री की प्रेरणा भी। इन सबके प्रति मैं शब्दो का आभार प्रकट करू यह सिर्फ एक औपचारिकता होगी, हृदय स्नेह, श्रद्धा एवं सद्‌भाव से भरा है, बस....

आशा है पाठक इस 'प्रेरणा के बिन्दु' से यदि बिन्दु भर प्रेरणा लेकर भी चले तो जीवन सिंधु की यात्रा मे उन्हे अवश्य सफलता मिलेगी.

रक्षाबन्धन १९७२ —गणेश मुनि शास्त्री

जैन धर्म स्थानक,

नाई (उदयपुर)

प्रकाशकीय

'प्रेरणा के बिन्दु' पुस्तक के लेखक हैं—स्थानकवासी जैन समाज के उदीयमान तरुण साहित्यकार श्री गणेश मुनिजी शास्त्री, साहित्यरत्न। मुनिश्रीजी के चिन्तन प्रधान हृदयग्राही रूपक तथा लघु कहानियों का यह अपूर्व संग्रह है। भाव भाषा शैली आदि सभी दृष्टियों से नवीनता लिए हुए हैं, साथ ही सहजगम्य भी है। पाठक अपने मस्तिष्क पर बिना भार दिये ही इसे ग्रहण कर सकेगा। अत इस आधार पर यह कहा जा सकता है कि मुनि श्री की अन्य कृतियों की तरह यह भी अत्यन्त लोकप्रिय सिद्ध होगी।

'अमर जैन साहित्य संस्थान' का यह परम सौभाग्य है कि मुनि श्री के एक-से-एक बढ़ कर ग्रन्थ प्रकाशन का शुभवसर उन्हें प्राप्त हुआ है और भविष्य में भी प्राप्त होता रहेगा। 'नूतन के भूले', 'जीवन के अमृत कण', प्रकाश में आ चुके हैं। 'प्रेरणा के बिन्दु' अब आ रहा है और 'विचार दर्शन' भी शीघ्र ही पाठकों के समक्ष आने वाले हैं। आशा ही, नहीं अपितु यह परम विश्वास है कि मुनि श्री के इस लोकप्रिय साहित्य का पाठक पूर्ण उत्साह से साथ स्वागत करेगा।

प्रस्तुत पुस्तक का प्रकाशन हिन्दी मे ही होने जा रहा था, किन्तु बम्बई महानगरी के भावुक व रुचिशील धर्म प्रेमी बन्धुओं का यह प्रेम भरा आग्रह रहा कि आप हमे एक ऐसी सुन्दर पुस्तक गुजराती मे तैयार करके देवें जिसका हम विशेष लाभ उठा सके। परिणामतः श्रीयुत् गुणवत भाई ने अल्प समय मे ही इसका सुन्दर अनुवाद कर हमे दे दिया, और भाई श्री नंदलालजी दोशी की मुद्रण सम्बन्धी लगन शीलता से पुस्तक ने अपना सुन्दर आकार प्राप्त किया। इस तरह यह पुस्तक पहले गुजराती मे 'प्रेरणानु झरणु' के नाम से छपी, अब हिन्दी मे छप रही है।

सुप्रसिद्ध उद्योगपति घोडनदी (पूना) निवासी श्रीयुत् सन्माननीय सेठ रसिकलाल माणिकचन्द जैन धारीवाल ने सम्पूर्ण पुस्तक का अर्थ दायित्व वहन कर अपनी जिस उदारवृत्ति का परिचय दिया उसके लिए हम उन्हे धन्यवाद प्रदान करते है, तथा अन्तर की गहराई से स्मरण भी करते हैं। आपके सौजन्य से ही यह पुस्तक इतनी शीघ्रता से बाहर आ सकी है।

साथ ही मेरे सहयोगी स्नेहशील मानस श्री शान्तिलालजी धर्मावत कोरपोल बड़ाबाजार, उदयपुर ने संस्थान का कार्य भार सँभाल कर मेरे वजन को हलका किया, तथा नि:स्वार्थभाव से अपना अमूल्य समय देकर सस्थान की जो सेवा कर रहे है उनके प्रति आभार प्रदर्शित करना मैं अपना परम कर्तव्य समझता हूँ।

मन्त्री :
राजेन्द्रकुमार महेता
अमर जैन साहित्य सस्थान
उदयपुर (राजस्थान)

सम्पादकीय

नौका चाहे कितना ही अच्छी हो, किन्तु महासागर की उत्ताल तरंगो पर चलने और तट पर पहुंचने के लिए हवा की आवश्यकता रहती है।

लगभग यही स्थिति हमारे जीवन की है। हमारा ज्ञान-विज्ञान चाहे कितना ही प्रखर हो, हमारे अनुभव चाहे कितने ही सुतीक्ष्ण हों, किन्तु जब तक हमें उन पर आचरण करने की प्रेरणा नहीं मिलती, प्रेरणा-पवन से जीवन की नौका में गति नहीं आती तब तक वह ज्ञान, विज्ञान, अनुभव और विवेक सब तट पर पड़ी नौका की भांति गतिहीन, निष्क्रिय एवं निष्प्राण है।

प्रेरणा दो प्रकार की होती है—एक नौका को चलाने वाली हवा व लहरों की प्रेरणा, वृक्षों को हिलाने वाले पवन व हिलोरों की प्रेरणा—जो बाहरी है, ऊपरी है। और दूसरी भूमि की गोद में सोये अंकुर को प्रस्फुटित करने वाली प्रेरणा, बंद कलियों के किसलय-कोष को उन्मुक्त करने वाली प्रेरणा—यह भीतरी है, अन्दर से स्फूर्त होती है।

भीतरी प्रेरणा स्वयं गति है, उत्साह है, चेतना और ऊर्जा है, बाहरी प्रेरणा उसकी सहायक होती है, गति को तेज करती है, उत्साह को बढाती है, चेतना और ऊर्जा को प्रखर बनाती है।

इस जीवन मे अपने लक्ष्य तक पहुचने के लिए हमे दोनो प्रकार की प्रेरणाओ की अपेक्षा है। सर्वप्रथम आन्तरिक चेतना जागृत होनी चाहिए, मन मे उत्साह, ऊर्जा और उमग लहरानी चाहिये और फिर उसे बाहरी प्रेरणा—भले ही वह शास्त्र से, इतिहास से, गुरु शिक्षा से या पुस्तको और जीवन-घटनाओ से प्राप्त हो, वह भी मिलनी चाहिए। हा, बाहरी प्रेरणा तभी सफल होती है, जब मन मे प्रेरणा जागृत हो, कहा जाता है—"मन के लगडे को देवता भी कधे पर उठाकर नही चल सकता।" मन सचेतन हो, अन्तर ऊर्जस्विल हो, तो बाहरी प्रेरणा की एक हलकी-सी हिलोर भी हमारी जीवन नौका को अपने तट पर पहुचा सकती है।

प्रेरणा के बिन्दु—मे इसी प्रकार की प्रेरक-शक्तियो का एक केन्द्रीयकरण किया गया है। यद्यपि ये प्रेरणाए बाहरी ही हो सकती है, किन्तु अन्तर प्रेरणाओ को स्पन्दित करने मे भी सक्षम होगी—इनके स्वाध्याय व चिन्तन से मन की वृत्तिया उत्साह से ललक उठेगी, स्पन्दित होगी, स्फूर्त होगी और फिर अपने लक्ष्य की ओर चल पडेगी ऐसा मेरा विश्वास है। यदि मन जाग उठा तो जग जाग उठा, मन चल पडा तो ससार गतिशील हो गया—इस विचार के अनुसार इन प्रेरणास्रोतो की लहरो

से यदि मन तरंगित हो गया तो बस, प्रेरणास्रोत अपने आप मे सार्थक हो जायेंगे, लेखक का श्रम स्वयं ही सत्कृति के योग्य हो जायेगा ।

विद्वद्वर्य श्री गणेश मुनि जी शास्त्री ने अपने दीर्घ कालीन अनुभवो, स्वाध्याय-प्रसूत विज्ञान-चक्षुओ से अब तक जो कुछ देखा, सुना, समझा है उसी के आधार पर इन प्रेरणा-स्रोतो मे एक जबर्दस्त लहर, एक वेगवान प्रवाह पैदा किया है। घटनाएं स्वयं मे बोलती सी लगती है और लगता है उनके भीतर से प्रेरणा-संगीत की लहरें, ध्वनियाँ प्रस्फुटित हो रही है।

मुनिश्री जी एक सरस हृदय के भावनाशील संत हैं, कवि हैं, लेखक भी हैं। उनका मन भी मधुर है, वचन भी मधुर है। वे स्वयं मे एक जीते-जागते प्रेरणा स्रोत है। उनके द्वारा ऐसे प्रेरणा के बिन्दु का संकलन वास्तव मे ही एक यथार्थ कृति का कृतिकार के साथ आत्म-मिलन है।

मुनि श्री के स्नेह, सौजन्य के कारण मुझे इनके सम्पादन का अवसर मिला, मैं तो इसे भी एक प्रेरणा ही मानता हूँ कि इस माध्यम से भी मुझे अपने प्रिय पाठकों के समक्ष कुछ प्रेरणादीप जलाने का एक निमित्त बना दिया जाता है, मैं इन दिव्य प्रेरणा के लिए मुनिश्री जी का आभारी हूं, और जो इनसे प्रेरणा लेंगे, उनकी प्रेरणाओ से मैं भी प्रेरित होता रहूंगा, यह विश्वास रखता हूँ।

रक्षा बन्धन
आगरा-२

—श्रीचन्द सुराना 'सरस'

अनुक्रम

१ | आत्म-दीप

आकाश की असीम ऊचाई पर उडते, अगुलियो के इशारो पर नाचते पतग की शोभा बडी दर्शनीय लगती है, पर, वह तभी तक ऊचाई पर उडाने भर सकता है, जब तक डोर से बधा है। यदि डोर कट गई, हाथो के केन्द्र से सम्बन्ध छूट गया तो वही उडनेवाली पतग कही नीचे जाकर ओधे मुह गिर पडेगी।

यही हाल हमारी आत्मा का है। यह शरीर चाहे भोग-विलास एव आनन्द की ऊचाइयो पर उडाने भरें, पर मनकी डोर यदि आत्मा से जुडी हुई है तो वह कही भटकेगी नही। विशाल वैभव के बीच रहकर भी वह जल कमल की तरह अलिप्त रह सकेगी। ऐसे आत्म-ज्ञानी जीवन के उदाहरण भारतीय साहित्य मे आज भी अमर हैं—चक्रवर्ती भरत और विदेहराज जनक। ऐसा ही एक विरल उदाहरण है बौद्धसाहित्य के धर्मा लोक साहित्य मे।

वर्मा के प्रसिद्ध कवि वार्पे ने एक कविता में राजा थीवा की निम्न घटना का आलेखन किया है—

वर्मा के राजा थीवा बडे ही आत्मज्ञानी, निस्पृह जीवन जीने वाले थे। एक रात्रि को एक ज्ञान-गर्व-दीप्त भिक्षु राजा के पास आया। राजा ने भिक्षु का स्वागत-सत्कार किया। भिक्षु ने राजा से कहा—"महाराज! आपके ज्ञानयोग की कीर्ति सुन कर मैं यहा आया हूं। किंतु मुझे आश्चर्य है कि इस विशाल राजवैभव एव भोगो की प्रज्वलित आग के बीच में भी आप विरक्त कैसे रह सकते हैं? मुझे वर्षो बीत गये अखड तपस्या करते, पर, मुझे आज तक वैसी आत्म-दृष्टि नही मिली है।

राजा थीवा मन-ही-मन भिक्षु की बाह्य-दृष्टि पर मुस्कराये। फिर बोले—आप ठीक समय देखकर नही आये। इस समय मैं मत्रणाओं में व्यस्त हू, आपके प्रश्न का उत्तर बाद में दूंगा। इस बीच आप यह दीपक लेकर मेरे अन्तःपुर का वैभव देख आइए। हा, याद रखिए यह दीपक कही बुझ न पाये, अन्यथा आप मार्ग भ्रष्ट हो जायेंगे और फिर आपको अन्तःपुर मे कही मार्ग नही मिलेगा, खोज निकालना भी असम्भव हो जायेगा।

अन्त पुर की मधुर रंग रेलिया देखकर भिक्षु जब वापस लौटा तो राजर्षि थीवा ने पूछा—"कहिए भिक्षु ! अन्तःपुर की सुन्दरिया आपको पसन्द आई ? कादम्ब की प्यालियो से आपको सुख मिला ? और अप्सराओं के मधुर नृत्य से आपका मनोरंजन हुआ ?"

"महाराज ! इस रूप संगीत-एव नृत्य की मधुर-मादक दुनिया के बीच जाकर भी, देखकर भी मैं कुछ नही देख पाया और न कुछ सुन पाया। मेरी दृष्टि तो इस दीपक की लौ पर टिकी थी—कही यह बुझ न जाय।"

राजा ने कृत्रिम आश्चर्य के साथ पूछा—"क्यो ?"

"आपने ही तो कहा था महाराज ! अगर दीपक बुझ गया तो मैं मार्ग भूल जाऊंगा। इसलिये बड़े यत्न से दीप को हवा के झोको से बचाता रहा।"

राजा ने गम्भीर होकर कहा—"भिक्षु ! यही तो आत्म-दृष्टि की कुजी है। आत्म-दीप पर जिसकी दृष्टि लगी है, उसे संसार के भोग, वैभव, नृत्य गान कुछ भी मोहित नही कर सकते !"

भिक्षु ने राजर्षि को श्रद्धापूर्वक प्रणाम किया।

२ | मां की सेवा

महाभारत में एक स्थान पर माता के गौरव की महिमा बताते हुए धर्मराज ने यक्ष को बताया है—

माता गुरुतरा भूमेः खात् पितोच्चतरस्तथा

माता पृथ्वी से भी विशाल है—भारी है, और पिता आकाश से भी ऊंचा है।

पुत्र के लिए सबसे बड़ा गौरव यही है कि माता-पिता की पवित्र सेवा में वह अपना जीवन समर्पित करदे। यही पुत्र के लिए सबसे बड़ी साधना है।

एक बार रामकृष्ण परमहंस के पास एक युवक संन्यास-दीक्षा देने की प्रार्थना लेकर आया।

परमहंस ने युवक को गम्भीरतापूर्वक देखकर पूछा—"क्या तुम्हारे घर में और कोई नहीं है?"

"केवल बूढी माँ है"—युवक ने धीमे से कहा।

"फिर तुम साधु क्यो बनना चाहते हो .. ?"

"महाराज! मैं ससार के बधनों से छूट कर मोक्ष प्राप्त करना चाहता हू।" युवक ने उत्तर दिया।

रामकृष्ण ने युवक की ओर स्नेहपूर्वक देखा, और मधुर शब्दो में कहा—"वत्स! अपनी वृद्ध माता को असहाय छोडकर सन्यासी बनने से मोक्ष मिलेगा—यह किसने बताया। मोक्ष का प्रथम सोपान तो माता-पिता की सेवा ही है। जाओ तुम अपनी मा की सेवा करो, इसी से तुम्हारी आत्मा पवित्र होगी और शाति प्राप्त करोगे?"

—●

३

एक प्रश्न

मनुष्य एक ऐसा प्राणी है, जो वर्तमान में जन्म लेकर भविष्य में जीने का प्रयत्न करता है। वह आज जो है, उससे सन्तुष्ट नही, किन्तु जो नहीं है, उसे प्राप्त करने में ही सुख की कल्पना किए बैठा है। यह एक प्रकार की मृगमरीचिका ही है। वास्तव मे जो आज के उपलब्ध मे सुख का स्पर्श नही कर सकता, वह कल के अनागत में सुख कैसे पायेगा ? सुख पाना ही है, तो आज ही क्यों नही पा लेते !

यही एक प्रश्न इतिहास के एक महान विजेता सम्राट से एक बूढे दार्शनिक ने पूछा था, सम्राट के हजारों-हजार उत्तराधिकारी आज भी उसका उत्तर नहीं दे पाये है।

सिकंदर महान जब दिग्विजय के लिए निकला तो

यूनान के तत्ववेत्ता पार्मेनिया ने सहज भाव से सम्राट से पूछा—"आप किस देश को विजय करने जा रहे है ?"

अहकारोद्दीप्त सम्राट ने कहा—'ईरान !'

"ईरान जीतने पर क्या करेगे. ... ?"

"फिर भारत को जीतूंगा !"

"भारत पर विजय प्राप्त कर फिर क्या करेगे ?"

"फिर सीथिया पर अपना अधिकार जमा दूंगा।"

"और सीथिया पर अधिकार जमा कर ?"

सम्राट मुस्कराकर बोला—"फिर ? फिर शाति से बैठ कर आराम करूगा...?"

बूढे पामनिया ने चादी-सी उजली श्वेत दाढी पर हाथ फिराते हुए मुक्त हसी ली—

—"तो फिर अभी से आराम क्यो नही करते. अभी कौन आपके चैन में दखल दे रहा है ...?"

और सम्राट निरुत्तर अपने आपको यो देखने लगा—जैसे कुछ दीख नही पा रहा है।

—●

४

महान् याचना

भक्त भगवान के समक्ष अपने सुख-दुख की याचना करने में तो सदियों से लीन रहा है, पर क्या वह कभी अपने सुख-दुख को भूलकर विश्वमंगल की कामना करते हुए भी प्रभु से वर-याचना करता है ?

सचमुच मानव मन की वही महान-याचना है, जिसमे वह अपने लिए नही, किंतु विश्वकल्याण की याचना कर प्रभु से वरदान मागता है।

प्रसिद्ध वीर रस-नाटक 'वेणी संहार' में एक उद्बोधक प्रसंग है। महाभारत युद्ध में विजय वैजयन्ती फहराकर समस्त पाडव एवं उनके मित्रगण—आनन्दोत्सव मना रहे थे। देव, गंधर्व एव किन्नर धर्मराज युधिष्ठिर पर पुष्प वर्षा रहे थे। तभी युधिष्ठिर के राज्याभिषेक की तैयारियाँ करने का आदेश देकर श्रीकृष्ण ने युधिष्ठिर से

पूछा—"भाई, तुम्हारा और कोई प्रिय कार्य शेष रहा हो, तो मुझे बताओ, मैं उसे भी पूरा करूं।"

विनय एवं कृतज्ञता से गद्गद् कंठ हुए युधिष्ठिर बोले—भगवन्! आपकी कृपा से मेरे सभी प्रिय कार्य सम्पन्न हो चुके है, फिर भी यदि आपका अनुग्रह-द्वार खुला है, तो बस मेरी यही एक याचना पूरी कीजिये—

अकृपणमतिः कामं
जीव्याज्जन पुरुषायुषम्,
भवतु भगवन् भक्ति
द्वैतं विना पुरुषोत्तमे।
दयित भुवनो विद्वद्
बन्धुर्गुणेषु विशेषवित्
सतत सुकृती भूयाद्
भूप प्रसाधितमण्डल।

—पृथ्वी के लोग कृपण न हो, उन्हे कोई रोग-शोक न हो, तथा वे पूर्णायु होकर जिये। भगवान मे सबकी एकनिष्ठ भक्ति हो। राजा अपनी प्रजा से प्रेम करे, विद्वानो का पोषण करे विशेष गुणग्राही हो, तथा

सत्कार्य करते हुए सदा यश प्राप्त करें।"

आज के राष्ट्रनायक यदि इन बातो को जीवन में उतार ले तो क्या इस वसुधा का सताप-ताप दूर होकर आनन्द की शीतल हिलोरे उठने न लग जाय ?
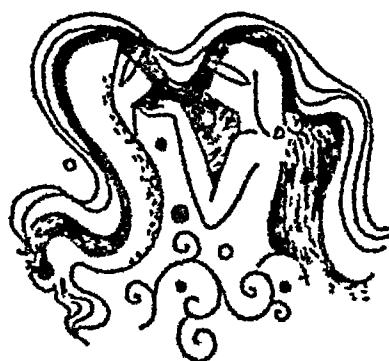
५ | सेवार्थी स्वेद-बिंदु

एक राज सभा मे प्रश्न चला—सबसे उत्तम जल कौनसा है ?

एक श्रद्धालु नागरिक ने कहा—गगाजल ।

उससे भी उत्तम .. ? पुन' प्रश्न पूछा गया,

एक ने कहा—भूमि पर गिरने से पहले का वर्षाजल ।

उससे भी उत्तम.. ? पुन' पूछा,

कवि ने कहा—प्रात काल हरी घास पर चमकने वाला–ओस-कण ।

उससे भी उत्तम ..... ?

बहुत वर्षों के बाद पुत्र को देखकर माता की आँखो से टपकने वाला स्नेहमय–अश्रु जल ।

उससे भी बढकर ..?

जन्मभर छल कपट रिश्वत बेईमानी से संगृहीत धन को देखकर मरणासन्न धनी के नेत्रो से झडने वाला–अनुताप-बिंदु ।

उससे भी बढकर उत्तम. ..?

दिन भर परिश्रम करके अपना रक्त सुखाकर अपने माता-पिता आदिपोष्य जनों के लिए मजदूरी करने वाले श्रमिक का–श्रम बिंदु ।

उससे भी उत्तम .. ?

किसी को दुःखी रोग-ग्रस्त एवं पीडित देखकर निस्पृह भाव से उसकी सेवा में पसीना बहाने वाले सत्पुरुष का सेवार्थी-स्वेद-बिन्दु ।

राजा ने प्रसन्नता के साथ अन्तिम उत्तर को सर्वोत्तम घोषित किया ।

६

हार-हार-जीत !

मनुष्य जब किसी प्रयत्न मे असफल हो जाता है, तो वह सिर पर हाथ धर कर बैठ जाता है, चिता सागर मे डूबकर अपने जीवन को समाप्त करने की सोचता है। वह असफलता से हार जाता है।

पर देखिए–असफलता ही सफलता के द्वार खोलती है, हार ही जीत का श्री गणेश करती है। एक सूक्ति है—हार-हार-हार ! सौ हार का जोड होता है–जीत।

जो हार से नही हारता वह अन्त में विजय प्राप्त कर रहता है।

अमेरिका का भूतपूर्व राष्ट्रपति अब्राहम लिकन एक गॉव का गरीब युवक था वह। मुसीबतो व असफलताओ के तूफान से सदा घिरा रहा,पर कभी उसने भाग्य के आगे

हार नही मानी, दृढ आत्मविश्वास से आगे बढता रहा, तो एक दिन अमेरिका के राष्ट्रपति पद पर पहुँच गया।

'रीडर्स डाइजेस्ट' में प्रकाशित उसकी हार-जीत पर जरा ध्यान दीजिये—

व्यापार में नुकसान	सन्	१८३१
लेजिस्लेचर के चुनाव मे हार	,,	१८३२
व्यापार में फिर हानि	,,	१८३३
लेजिस्लेचर में चुनाव	,,	१८३४
प्रेयसी की मृत्यु	,,	१८३५
स्नायु रोग का आक्रमण	,,	१८३६
स्पीकर के चुनाव में हार	,,	१८३८
लैंड अफसर की नियुक्ति मे हार	,,	१८४३
कॉंग्रेस के चुनाव मे हार	,,	१८४३
कांग्रेस मे चुनाव	,,	१८४६
दुवारा चुनाव मे हार	,,	१८४८
सिनेट के चुनाव मे हार	,,	१८५५
वाइस प्रेसिडेंट के चुनाव मे हार	,,	१८५६
सिनेट के चुनाव मे पुन हार	,,	१८५८
प्रेसिडेंट के चुनाव में जीत	,,	१८६०

साहस का पुतला अब्राहम हार-हार के बाद चोट

खाये हुए गेंद की तरह पुन उछलकर अपने लक्ष्य की ओर बढता रहा। और आखिर मे अमेरिका के राष्ट्रपति पद पर पहुंच ही गया। भगवान महावीर की यह वाणी सिद्ध हुई—"सवीरिए परायिणइ"—वीर्यवान् दृढ आत्मविश्वासी और साहसी व्यक्ति—अवश्य जीतता है।

७

महत्व किसमें ?

वस्तु का महत्व उसकी शक्ति मे नहीं, उपयोग में है ? सिह और हाथी सबसे शक्तिशाली पशु है, अष्टापद उनसे भी अधिक शक्तिशाली होता है, पर उस शक्ति का लाभ क्या है-संसार के लिए ? जबकि घोड़ा, गधा उनसे कम शक्तिशाली है, पर मानव के लिए अधिक उपयोगी और लाभदायी है।

आग की चिनगारी मे ज्वलन शक्ति है—वह जलकर दीप को प्रज्वलित कर अंधेरा भी मिटा सकती है, और बडे-बडे जगलो को भस्मसात् भी कर सकती है। और स्वादिष्ट पकवान भी बना सकती है।

चिनगारी का महत्व-उसकी दाहकता में नही, किन्तु कहाँ, कितनी उपयोगी होती है, उसी में है।

मानव का महत्व भी–उसके सुन्दर, बलवान आकर्षक–शरीर से नही, किंतु संसार के लिए वह कितना उपयोगी होता है–इसी में है।

दुबले पतले गाधी ने ससार की जो सेवा की वह गामा जैसे—हजार-हजार पहलवान भी नही कर सकते।

मानव! यह तुम्हारे हाथ मे है—तुम सिह जैसे शक्तिशाली बनकर हिसा और आतक के प्रतीक बनते हो, या घोडे की तरह शक्ति के साथ सेवा के!

मानव! तुम चिनगारी बनकर विध्वस का कारण बनते हो, या प्रकाश की उज्ज्वल-किरण!

८
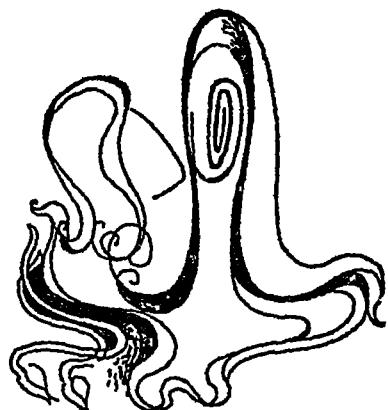
कण और क्षण

संस्कृत की एक प्रसिद्ध सूक्ति है—

कणशः क्षणशश्चैव विद्यामर्थं च संचयेत्

कण-कण करके धन और क्षण-क्षण करके ज्ञान अर्जित करते रहना चाहिए।

एक उक्ति है—"समय का सदुपयोग करने वाला ही महापुरुषों की पंक्ति में बैठ सकता है।"

जो समय का महत्व समझता है, समय उसको महत्व-पूर्ण बना देता है।

भगवान महावीर से एक बार देवराज इन्द्र ने प्रार्थना की—"प्रभो! आपके नाम पर भस्मग्रह बैठ रहा है, अत आप अपनी जीवन डोरी को दो क्षण आगे बढ़ादें तो जिन-शासन की अभिवृद्धि दिन दूनी रात चौगुनी होती रहेगी,

अन्यथा आपके निर्वाण के पश्चात् धर्मशासन क्रमश' कमजोर होता जायेगा।"

अनन्तबली महावीर ने कहा—"देवेन्द्र। दो क्षण तो बहुत बडी बात है, पर कोई भी महाशक्तिशाली पुरुष एक समय भर भी अपनी जीवन डोरी को आगे नही बढा सकता, एक सास भी अधिक नही ले सकता। यह असम्भव है कि हम किसी अवशेष काम को पूरा करने के लिए एक क्षण भी अधिक जी सके या एक समय के लिए मृत्यु को कहे--कि जरा रुक जाओ! हमें अपना काम पूरा कर लेने दो! मृत्यु कभी किसी का इन्तजार नही करती।"

अनन्तबली महावीर भी जब एक क्षण भर अपनी जीवन लीला को आगे नही बढा सके, तो फिर इतने मूल्यवान और शक्तिशाली क्षण को यदि हम व्यर्थ में ही खो देते है तो कितनी बडी मूर्खता है यह ?

उर्दू के एक कवि ने कहा है—

> जो जाके न आये वह जवानी देखी,
> जो आके न जाये वह बुढ़ापा देखा।

क्रियाशीलता की घडी एक बार आकर पुन. नही लौटती।

भ. महावीर ने कहा है—

जा जा वच्चई रयणी
न सा पडि नियत्तइ

जो-जो रात्रियां व्यतीत हो गई हैं, वे पुनः लौट कर नही आती। जो तीर हाथ से छूट गया है, जो वाणी मुंह से निकल गई है, और जो समय बीत चुका है वह लौट कर पुनः कभी अपने स्थान पर नही आ सकता।"

—●
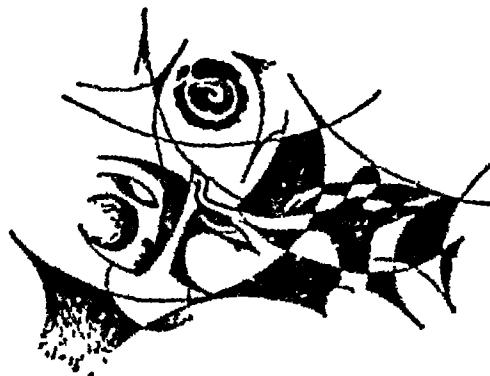
६ | अमृत बेल—मत काटिए

हम लोग जिसे 'वक्त काटना' कहते है, वह वास्तव में 'वक्त काटना' नही, किन्तु मूर्खता वश अपने ही हाथो अपने घर मे फूली-फली अमृतलता को काटना है। वास्तव मे हमारा क्षण, अमृतबेल से भी अधिक मूल्यवान है। एक-एक क्षण अपना अमूल्य महत्व रखता है पर उसका महत्व हम समझे तब न ?

बेंजामिन फ्रैंकलिन की पुस्तको की दुकान थी। एक व्यक्ति दुकान पर आया और कर्मचारी से पूछा—

'इस पुस्तक की कीमत क्या है ?'

उत्तर मिला—'एक डालर।'

'कुछ कम नही।'

नहीं !

खरीदने वाला थोड़ी देर इधर उधर घूम कर आया और फिर पूछा, "फ्रैंकलिन अन्दर है ? मैं उनसे मिलना चाहता हूँ ।"

फ्रैंकलिन आये। उस व्यक्ति ने पूछा—"इस किताब की कीमत कम-से-कम क्या लेंगे ?

फ्रैंकलिन—'सवा डालर'

ग्राहक आश्चर्य चकित हो बोला—"अभी तो आपके कर्मचारी ने एक डालर बताया....?"

'जी हां, यह चौथाई डालर मेरा वक्त नष्ट करने के लिये देना पड़ेगा।'—फ्रैंकलिन ने कहा

अच्छा, तो एक कीमत बता दीजिए !'

'अब डेढ़ डालर। और आप जितना समय नष्ट करेंगे उतनी ही कीमत अधिक होगी"—फ्रैंकलिन कहकर भीतर जाने लगे। ग्राहक ने चुपचाप डेढ़ डालर देकर पुस्तक खरीद ली।

समय के उपयोग के लिए इतनी जागरूकता रखने वाला ही उसका लाभ उठा सकता है।

—●

१०

कल

कहावत है—'कल' शैतान का दूत है।" 'कल' पर जिसने शुभ कार्य छोड दिया, उसने अपने पुण्य की वेल को अपने हाथो काट डाला।

भगवान महावीर ने कहा है—

जो जाणइ न मरिस्सामि

सो हु कखे सुए सिया।

जो व्यक्ति यह विश्वास कर सकता है कि मैं कल तक नही मरूगा, वही 'कल' पर अपना काम छोड सकता है। और यह 'कल' का भरोसा चक्रवर्ती सम्राट् भी नही कर सकते तो साधारण मनुष्य की क्या विसात ?

धर्मराज युधिष्ठिर के समक्ष एक ब्राह्मण दान लेने उपस्थित हुआ। युधिष्ठिर राज कार्य मे व्यस्त रह कर

काफी थक चुके थे अत. ब्राह्मण को 'कल' दान लेने के लिए कह कर खाली ही लौटा दिया। भीम ने ब्राह्मण को 'कल' के भरोसे लटकाया देखकर धर्मराज के समक्ष जोर से शख ध्वनि की और मस्त होकर लगे नाचने।

धर्मराज ने भीम को यों नाचते-झूमते देखकर पूछा— "भीम! आज क्या बात है? किस खुशी मे नाच रहे हो?"

भीम ने कहा—"हमारे महाराज युधिष्ठिर ने दुर्जय-काल को जीत लिया है।"

धर्मराज आश्चर्य से भीम की ओर ताकने लगे— 'कैसी बात करते हो भीम! अजेय काल को कोई जीत सका है आज तक?"

तो महाराज! आपने फिर ब्राह्मण को कल दान देने का वचन कैसे दिया? आपका वचन कभी असत्य नही हो सकता। कल तक के लिए आपने अवश्य ही काल पर विजय प्राप्त की होगी न...?"

धर्मराज ने ब्राह्मण को बुलाया और तुरन्त दान दिया—शुभस्य शीघ्रम्।

'कल' को कोई नही जीत सकता।

"कल की कौन जाने, पल की खबर नही।"

एक इतिहासकार ने लिखा है—'कल' की असि-धारा ने कितने ही प्रतिभावानो का गला काट दिया।" नेपोलियन का उदाहरण सर्व-विदित है। कुछ घण्टो के विलब ने ही उसे वाटरलू में वह शिकस्त दी कि इतिहास ही बदल गया।

सेनापति कर्नल राहल की कहानी भी प्रसिद्ध है। वह ताश खेल रहा था और सैनिक ने पत्र लाकर दिया। सेनापति ताश में मगन था, पत्र को जेब मे रख लिया। ताश का खेल खत्म होने पर जब पत्र देखा तो सेनापति विमूढ सा रह गया। शत्रु के आकस्मिक आक्रमण की सूचना थी उसमें। जब तक वह रणक्षेत्र मे रवाना हुआ तब तक पासा ही पलट गया।

यह है जरा-सा विलम्ब। थोडा-सा प्रमाद। इसीलिए तो भ० महावीर ने सावधान किया है—

समयं गोयम मा पमायए!—समय मात्र भी प्रमाद मत करो।

११ | योगनिद्रा

जैन आगमो में पूर्व एव उत्तर—दो दिशाओ को श्रेष्ठ माना है। दीक्षा, अध्ययन आदि शुभ कार्य पूर्वाभिमुख होकर करने का विधान अनेक सूत्रों मे मिलता है।[1] वैदिक ग्रन्थो मे भी पूर्व को श्रेष्ठ दिशा माना है। इस मान्यता का कारण कोई अन्धविश्वास या आधिदैविक-प्रभाव नही, किंतु जीवन पर परमाणुओ का चुम्बकीय प्रभाव होने का वैज्ञानिक सत्य है। दर्शन की सूक्ष्मताओ से अनभिज्ञ व्यक्ति इन बातो का उपहास कर लेते है, पर जब उनके समक्ष यह वैज्ञानिक तथ्य प्रकट होता है तो स्वय वे ही अपनी भूल पर पश्चात्ताप किए बिना नही रहेंगे।

---

१ देखिए—स्थानांग सूत्र २।१

प्रसिद्ध जर्मन दार्शनिक शापन हॉवर युवावस्था में अनिद्रा रोग से बुरी तरह ग्रस्त था। भारतीय योग का ज्ञाता होने के कारण उसने योगनिद्रा—(चुम्बकीय निद्रा-वैज्ञानिक नाम) के सम्बन्ध में प्रयोग करने शुरू किये। इन्ही प्रयोगो में उसने एक प्रयोग किया-अपने सोने की दिशाएं बदली। पूर्व की ओर सिर तथा पश्चिम को पैर कर सोना प्रारम्भ किया और इस प्रयोग का आश्चर्यजनक प्रभाव हुआ—उसे गहरी नीद आने लगी, स्वास्थ्य भी सुधरने लगा।

नेपोलियन के लिए तो प्रसिद्ध है कि वह युद्ध क्षेत्र मे पूर्व की ओर सिरहाना करके सोता था।

इग्लैंड के प्रधान मन्त्री डिजरेली तथा ग्लैडस्टन सदा इस बात की फिकर रखते थे कि उनका बिस्तर कैसे लगाया गया है। वे दिशासूचक यन्त्र से दिशा ज्ञान करके ही बिस्तर पर लेटते थे।

ग्रामोफोन के आविष्कर्ता टामस एलवा एडिसन, सिर्फ चार घटे सोकर ही स्वस्थ नीद लेते थे, वे भी पूर्व की ओर सिर कर के सोने का आग्रह करते थे।

इग्लैंड के प्रसिद्ध चिकित्सक डाक्टर जार्ज स्टार ने अपनी विश्व विख्यात पुस्तक 'चिकित्सा विज्ञान' में लिखा

है—... कई ऐसे बच्चों को जिनका शरीर पोषण तत्वों के अभाव में क्षीण पड गया था, मैंने केवल उनके बिस्तर की दिशा बदल कर पूर्ण स्वस्थ कर दिया।[1]

इन उदाहरणों से पूर्व दिशा के सम्बन्ध में हमारी प्राचीन मान्यता की वैज्ञानिक सम्पुष्टि होती है कि दिशाओ की चुम्बकीय-किरणे हमारे जीवन और कृतित्वों पर कहां तक प्रभाव डालती है।

---

१ नवनीत १९५३ जुलाई पृष्ठ ३८

१२

जूता फैंकने वाला

कहावत है—गर्म लोहे को ठडा लोहा काट देता है। बुराई भलाई से परास्त हो जाती है। क्रोध और वैमनस्य की आग क्षमा के शीतल जल से शात हो जाती है।

हमारे जीवन में अनेक प्रसग है जब हमारा मन क्रोध की गर्माहट से बुदबुदाने लगता है। किंतु उन प्रसंगो पर यदि क्षमा और विवेक से सोचने लगे तो वे ही प्रसंग हमारी विजय के प्रसग बन सकते है—

एक बार नेताजी सुभाषचन्द्र बोस किसी सार्वजनिक सभा मे भाषण कर रहे थे। एक व्यक्ति ने उन पर अपना जूता फैंका। भीड मे शोरगुल मच गया। जनता क्रोध मे उफन पडी।

नेताजी ने तपाक से जूता उठा लिया और लाउड-स्पीकर पर बड़ी ही सयत वाणी मे बोले—"धन्य है वह

देश, जिसके नागरिक नगे पाव घूमने वाले अपने नेताओं को जूते पहनाते है। लेकिन मुझे अफसोस है कि यह जूता एक ही पांव का है, कृपा कर वे एक पांव का जूता और भी देने की महरबानी करें।"

जूता फेंकने वाला व्यक्ति शर्म से जमी में गड़ गया। लोग नेता जी की शाति और सहिष्णुता पर जय-जयकार कर उठे।
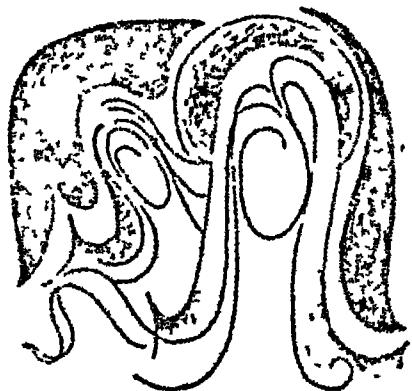
१३ | धार्मिक सहिष्णुता

जीवन मे सिर्फ आपत्तियो से जूझने के लिए ही सहिष्णुता की आवश्यकता है ऐसी बात नही, धार्मिक वाद-विवाद एव मतभेदो के झझावातो से मुकाबला लेने के लिए भी सहिष्णुता की अत्यन्त आवश्यकता है। भगवान महावीर ने कहा है—जो धार्मिक दृष्टि से सहिष्णु नही है, एक-दूसरे की निदा और प्रशसा में ही उलझे रहते है, वे इस ससार चक्र को पार नही कर सकते।

सयं सयं पसंसंता गरहंता परं वयं
जे उ तत्थ विउस्संति संसारं ते विउस्सिया।

—सूत्र० १।२।२३

जो अपने धर्म व मत की प्रशसा व दूसरों की निन्दा करने मे ही अपनी पंडिताई दिखाते है, वे एकातवादी

संसार चक्र में भटकते रहते हैं।

धार्मिक सहिष्णुता के सम्बन्ध मे जनता से निवेदन करते हुए सम्राट अशोक ने अपने एक शिलालेख में लिखवाया है—

यो हि कोचि आत्मपासंडं पूजयति, पर पासडं वा गरहति सवं आत्मपासंडं भतिया किति, आत्मपासंडं दीपयेय इति सो च पुन तथा करोतो आत्मपासंडं बाढतर उपहनति। तं समवाय एव साधु किति अंणमणस धमं श्रुणेयु च सश्रुषेयु च।

—सम्राट अशोक का बारहवां शिलालेख

यदि कोई व्यक्ति अपने सम्प्रदाय की प्रशंसा करता है और दूसरे के सम्प्रदाय की निंदा करता है, केवल इस-लिए कि उसे अपने सम्प्रदाय से भक्ति है, तो वह स्वय अपने ही सम्प्रदाय को हानि पहुँचाता है। इसलिए यह उचित है कि विभिन्न सम्प्रदायो और धर्मों के मानने वाले एक दूसरे के मत को श्रद्धा से सुने और समझने का प्रयत्न करे।

ये दोनो विचार सूत्र इस बात का संकेत देते है कि सिद्धान्त, दर्शन और धर्म को लेकर जीवन, समाज एवं

राष्ट्र में कलह तथा द्वेष फैलाना निरी मूर्खता ही नहीं महान अपराध भी है।

धर्म और दर्शन तो जीवन निर्माण के लिए है, विध्वंस के लिए नहीं। शांति के लिए है, कलह के लिए नहीं। पानी जीवन जीने के लिए है, मौत का साधन बनाने के लिए नहीं।
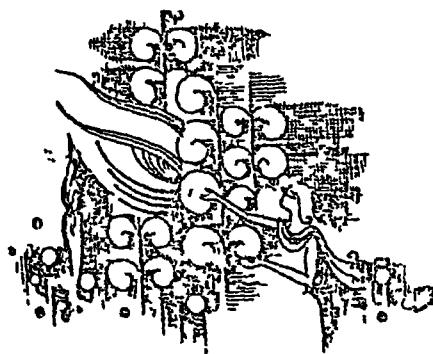
१४

अज्ञान का ज्ञान

महान नीतिविज्ञ भर्तृहरि ने कहा है—

"जब मै मूर्ख था तो यह समझता था कि मैं बहुत कुछ जानता हूं, किन्तु जब कुछ-कुछ जानने लगा तो यह अनुभव हुआ कि मै कुछ भी नही जानता।"

वास्तव में अज्ञानी अपने अज्ञान को नही समझ पाता जबकि ज्ञानी अपने अज्ञान को समझने के कारण ही ज्ञानी बनता है।

संस्कृत की सूक्ति है—'स्वाज्ञानज्ञानिनो विरला जना.'—अपना अज्ञान जानने वाले विरले होते है।

प्रोफेसर हक्सले कही भाषण कर रहे थे—"यह विश्व सच में क्या है, क्यों है और कैसे है यह ठीक-ठीक नही ही बताया जा सकता।"

एक युवक ने बीच मे पूछा—"तब आपके इस सारे ज्ञान का उपयोग ही क्या, यदि आप इतना भी नही जान पाये ।"

हक्सले ने उत्तर दिया—"हा, जानता मैं भी नही और तुम भी नही । पर मै यह जानता हूँ कि मै कुछ भी क्यो नही जानता, (मै अपने अज्ञान का कारण जानता हूँ) जबकि तुम यह नही जानते । तुम्हारे मेरे बीच मे इतना ही भेद है ।"

१५

उदारता

दुर्जन के साथ दुर्जनता का व्यवहार तो सभी करते ही हैं, किंतु बडप्पन इसमे है कि उसके साथ भी सज्जनता का व्यवहार किया जाय।

उर्दू के महाकवि मिर्जागालिब से किसी ने कहा—"अमुक व्यक्ति तुम्हे गालिया दे रहा है, तुम उसको क्या जवाब दोगे ?"

मिर्जा गालिब हंसते हुए बोले—अगर कोई गधा तुम्हें लात मारे तो क्या तुम भी उसे लात मारोगे ?

ऐसा ही एक प्रसग अंग्रेजी के महाकवि गेटे के साथ घटित हुआ।

गेटे एक बार ऐसी तग गली मे से निकल रहे थे कि सामने से कोई आये तो बिना रास्ता छोडे निकल नहीं

सकता ! सयोग वश उसी गली मे सामने से एक व्यक्ति आ रहा था जो गेटे का सबसे तीखा व कटु आलोचक था। गेटे को देख कर वह रास्ते मे डट गया और बोला–"मै गधो के लिए रास्ता नही छोडा करता"।

गेटे मुस्कराते हुए एक ओर होगए और बोले–'लेकिन मैं तो छोड दिया करता हू ।"

इन दोनो घटना प्रसगो पर भगवान महावीर का यह वचन याद आता है –जो सहइ स पुज्जो ।" जो निंदा अपमान और कटुवचन सहन करता है, वह महान है।

–●
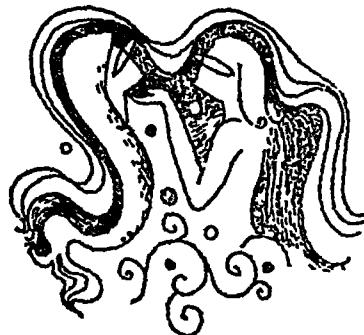
१६ | नदी का किनारा

"मनुष्य अपने सुख को सही रूप मे नही आंक पाता। दूसरे को सुखी देखकर सोचता है वह मेरे से ज्यादा सुखी है, मुझे भी वैसा ही सुख मिले।" वास्तव मे यह एक वितृष्णा है, जिसे मृगमरीचिका भी कह सकते है। इस वितृष्णा मे फसा मानव सुख प्राप्त करके भी सुख का आनन्द नही ले सकता, किंतु सुख की कमी अनुभव करके तडपता रहता है।

कविगुरु रवीन्द्रनाथ की एक कविता है, जिस का भाव है—

नदी का यह किनारा नि श्वास ले-लेकर कहता है—मुझे विश्वास है, सारा सुख उधर के किनारे पर पड़ा है।

और नदी का उधर का किनारा हाथ मल-मल कर सोचता है—सारे सुख तो इधर के किनारे पर चले गये।●

१७ | दुर्जन और सज्जन

दुर्जन कही भी जाये—वह अपनी दुर्जनता से बाज नही आता। सज्जन कही भी जाये वह अपनी सज्जनता कही नही छोडता। सज्जन-सज्जनता नही छोडता इस कारण उसे सर्वत्र स्नेह, सन्मान और सुरक्षा प्राप्त हो ही जाती है। इस शाश्वत सत्य का उद्घाटन करने वाली एक लोक कथा है—

एक शृगाल किसी गड्ढे मे गिर पडा। वहुत प्रयत्न किए, पर बाहर निकल नही सका। थोडी देर बाद एक बकरी उधर से निकली। धूर्त शृगाल ने मीठी वाणी मे कहा—' बहन ! आओ ! बडा शीतल जल है, मीठा भी वहुत है, आओ ! पीओ !"

भोली बकरी गड्ढे में उतर आयी। शृगाल उसकी पीठ पर चढकर बाहर फाँद गया और बोला—"अबोध !

इतनी जल्दी किसी पर विश्वास नही कर लेना चाहिए।"

वकरी ने उत्तर दिया—मूढ ! तू नही जानता। सज्जन अपना स्वभाव नही छोडते। विपत्ति झेलकर भी परोपकार करते है। फिर भगवान ने मेरे वक्ष मे तो दूध जो भरा है। हां, मै यहा नही आती तो तेरी दुर्गति होती, तू पड़ा-पड़ा मर जाता। किंतु मेरी कोई दुर्दशा नही होगी अभी मेरा मालिक आयेगा और मुझे निकाल ले जायेगा। हम सर्वस्व देते है, अतः जहा जाते है वहा अपनापन ही पाते है। हमारी सज्जनता कभी निष्फल नही जाती।

●
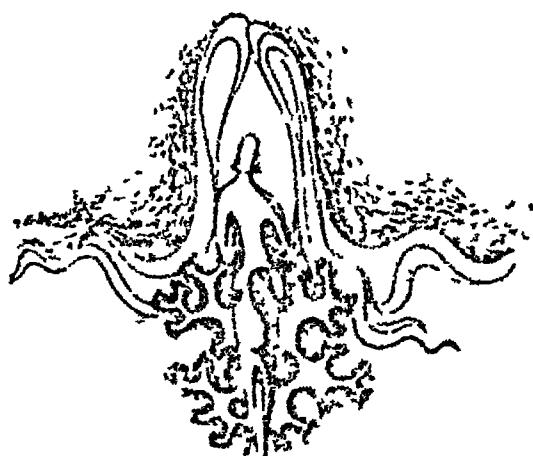
१८ | उद्योग और विवेक

"उद्योगिनं पुरुषसिंहमुपैति लक्ष्मी '—उद्योगी पुरुष सिह को लक्ष्मी स्वय ही वरण कर लेती है। यह उक्ति अक्षरश सत्य है।

और यह भी सत्य है—"विवेक ही लक्ष्मी की रक्षा करता है।"

दृढ लगन से मनुष्य एक बार सिद्धि के चरम शिखर तक अवश्य पहुच जाता है किंतु उसमे यदि विवेक नही रहा, सिद्धि को पचाने की शक्ति नही रही तो वह सिद्धि अधिक दिन टिक नही सकती।

मैंने एक दिन पूनम के चाद को आकाश मे विहसते देखा—तो उसका भूत-भविष्य मेरी आँखो मे तैर गया।

उद्योग और दृढ लगन के कारण बढता-बढता चाँद

एक दिन पूनम का चाँद बन गया। संसार भर में चमक उठा-सिर्फ तेरह दिन में ही।

और जब उस सिद्धि को पचा नही सका तो वह सिद्धि, वह पूर्णता दूसरे ही दिन क्षीण होने लगी और कुछ दिन मे ही उसका अस्तित्व एक धुधली क्षीण रेखा बन कर रह गया।

जीवन मे इसी सत्य तथ्य पर चिंतन करो। उद्योग के साथ विवेक और विवेक के साथ उद्योग-दोनो के मिलन मे ही सिद्धि मिलती है और स्थिरता भी।

-●

१९
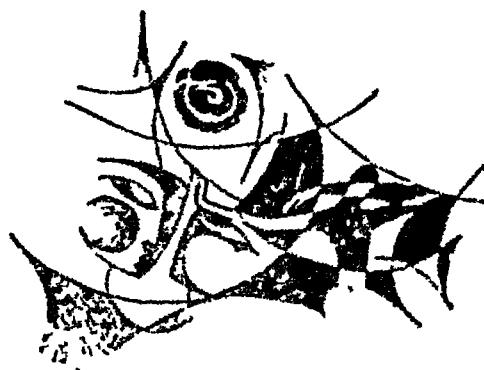
वादों की परिभाषा

समाजवाद और साम्यवाद की व्याख्या समझने की कोशिश करते-करते सहसा एकदिन 'न्यूयार्क ट्रिब्यून हेराल्ड' मे प्रकाशित एक उद्धरण पर दृष्टि चली गई। सक्षेप मे इतनी संतुलित व्याख्या शायद अन्यत्र अब तक देखने मे नही आयी।

समाजवाद—अगर तुम्हारे पास दो गाये है तो एक अपने पडौसी को दे दो।

साम्यवाद—अगर तुम्हारे पास दो गाये है, तो उन्हे तुम सरकार को दे दो। फिर सरकार उनसे निकला हुआ थोडा-सा दूध तुम्हे दे दिया करेगी।

फासिस्टवाद—अगर तुम्हारे पास दो गाये है तो उन्हे अपने पास रखो। उनका दूध दुह कर सरकार के

पारा पहुचा दो और तब सरकार उमी मे से थोड़ा-सा दूध तुम्हारे हाथ बेच देगी ।

नात्सीवाद—अगर तुम्हारे पास दो गाये है तो सरकार तुम्हे गोली मारकर दोनों गाये छीन कर अपने पास रखेगी ।

पूंजीवाद—अगर तुम्हारे पास दो गाये हैं, तो उनमे से एक को बेचकर अच्छा सा सांड खरीद लो ।

नवनीत १९५६ सितम्बर पृ. ५६

२०

आदर्श

भगवान महावीर ने साधक का आदर्श बताया है— साधक को किसी इच्छित वस्तु की प्राप्ति न हो तो तपस्या का प्रसग प्राप्त हुआ मानकर उस अलाभ की स्थिति मे भी प्रसन्न रहे, और यदि लाभ प्राप्त होता है तो अपने 'छंदिय साहम्मियाण भुंजे-साधर्मियो में बॉटकर खाये।

इस प्रकार अलाभ की पीडा और लाभ का उन्माद-दोनो से भी साधक बच सकता है।

हजरत इब्राहीम ने किसी साधु से पूछा—कहो, सच्चे साधु का क्या लक्षण है ?"

साधु ने उत्तर दिया—"मिला तो खा लिया न मिला तो सतोष कर लिया।"

इब्राहीम बोले--"यह तो हर कुत्ता करता है।"

साधु ने आश्चर्य पूर्वक देखा—और कहा—तब आप ही बताइये।"

इब्राहीम ने कहा—"मिला तो बांटकर खा लिया, और न मिला तो भगवान ने तपस्या का अवसर प्रदान किया है—यह मानकर खुश रहे।'

—●

२१

ज्ञानी की भूल
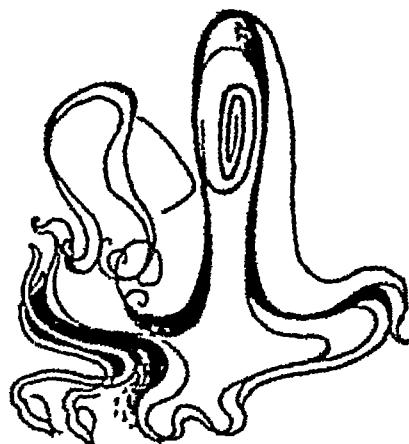
कुछ विद्वानो का विचार है—मूर्ख यदि पाप करता है तो वह दया का पात्र है, कि उसे पाप पुण्य का ज्ञान ही नही है, आंख ही नही है तो देखेगा क्या ? पर यदि कोई विद्वान होकर भी पाप करता है तो वह घृणा का पात्र है, चूकि वह सुआँखा होकर भी गड्डे मे गिर रहा है। यह विचार है। व्यावहारिक भूमिका का।

दर्शन की गहराई मे जाने पर कुछ और ही विचार सामने आते है। दर्शन–ज्ञानी केपाप की अपेक्षा। मूर्ख—अज्ञानी के पाप को अधिक दु खदायी व बधन कारक मानता है।

बौद्ध दर्शन के मिलिंद-प्रश्न ग्रन्थ मे सम्राट मिलिन्द ने आचार्य से पूछा—भंते ! जो जानते हुए पाप करता है और

एक जो अनजाने पाप करता है उन दोनो में किसका पाप अधिक है ?"

स्थविर ने उत्तर दिया—महाराज ! जो विना जाने पाप कर्म करता है उसी का पाप कर्म अधिक है ?"

मिलिन्द—भते यह कैसे ?

स्थविर—महाराज ! यदि कोई एक लोहे के दहकते लाल गोले को जानते हुए छुए और दूसरा विना जाने छुए तो उन दोनो में कौन अधिक जलेगा ?

"भते ! जो विना जाने छुये वही !

"महाराज ! इसी प्रकार जो मनुष्य विना जाने पाप करता है उसे अधिक पाप लगता है।

जैन दर्शन भी इस सिद्धान्त की पुष्टि करता है—जैन सूत्रो मे वताया है—एक ही पाप क्रिया से अज्ञानी तीव्र कर्म बंधन करता है जवकि ज्ञानी का कर्म वध वहुत हलका होता है। धागेवाली (स-सूत्र) सूई कचरे में पडकर भी खोती नही, जवकि विना धागे वाली सुई गिर जाने पर मिलनी कठिन होती है।[1] वैसे ही ज्ञानी पाप करके भी

---

१ उत्तराध्ययन सूत्र

उससे शीघ्र मुक्त हो सकता है जबकि अज्ञानी उसी में डूबा रह जाता है।

अज्ञानी का पाप तीव्र होता है पुण्य हलका
ज्ञानी का पाप हलका होता है पुण्य तीव्र !

इसलिए तो ज्ञान को जीवन का परम अमृत माना है। अज्ञान को विष।

२२ | कमाल पैदा करें

गुणज्ञ हृदय हजार-हजार बाधाओ को पार कर और सैकडो कठिनाइयां झेलकर भी गुण का आदर करने उसकी छाया में चला ही जाता है।

गुण और गुणज्ञ—का घनिष्ट सम्बन्ध है। हजार कोश दूर रहा गुण,—गुणज्ञ हृदयो को अपने प्रति वैसे ही खीच लेता है जैसे हजार शिकायतों और ईर्ष्याओ को सह-कर भी गुलाब बुलबुल को अपनी ओर खीच लेता है।

कहते हैं एक बार बादशाह सुलेमान के दरबार मे बुलबुल के आलाप से खीझकर पक्षियों ने शिकायत की—"बुलबुल के तराने के कारण कोई भी पक्षी अपने घोसले में सुख से नीद नही ले सकता।"

सुलेमान ने बुलबुल को बुलाकर जवाब तलब किया।

बुलबुल ने कहा—"जहापनाह ! मेरी चहक तो गुलाब के प्रति मेरी हृदय की मूक प्रीति के कारण स्वत ही फूट जाती है। मैं क्या करूँ ? उसका अनुपम सौंदर्य मेरी हृदय वीणा के तारो को स्वय झकृत कर देता है। इसमे मेरा क्या कसूर ? उसको ऐसा सौदर्य दिया ही क्यो ?[1]"

वास्तव में गुण जहा होगे, तो गुणज्ञ अपने आप खिचे आयेंगे, हर किसी विघ्न-बाधा का मुकाबला करके भी आयेंगे ।

उर्दू के प्रसिद्ध शायर अकबर ने भी कहा है—

"हुजूमे-बुल-बुल हुआ चमन मे
किया जो गुल ने जमाल पैदा ।
कमी नही, कद्रदा की 'अकबर'
करे तो कोई कमाल पैदा ।"

—गुलाब के सौंदर्य को देखकर बाग मे बुलबुलो की भीड एकत्र हो गयी है। सच है, कद्रदा की कही कमी नही है, कोई कुछ कमाल तो पैदा करें ।

---

१. फरीदुद्दीन अत्तार (फारसी कवि)

यही बात संस्कृत की एक सूक्ति में कही है—

नहि रत्नमन्विष्यति, मृग्यते हि तत् ।

रत्न जौहरी को नही खोजता, जौहरी अपने आप रत्न को खोज लेता है। गुण जहाँ होता है गुणज्ञ वहा पहुँच जाता है, फूल जहा होता है, भौरा वहा अपने आप पहुँच जाता है।
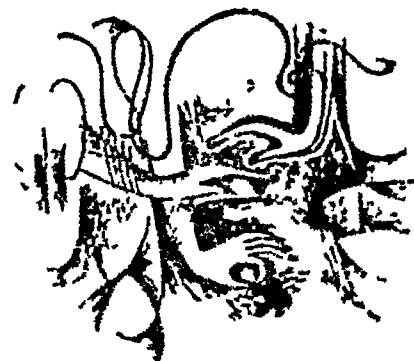
२३ | समय को कैसे जीते ?

समय—क्षण-क्षण करके चला जाता है, नदी की धारा की तरह वह जाता है, जो इसका उपयोग कर लेता है वह कण-कण से सुमेरु खडा कर लेता है, नदी की वहती धारा से अपार रत्नराशि प्राप्त कर लेता है।

चार्ल्स फास्ट नामक मोची का काम करने वाला एक व्यक्ति अपने काम मे से एक घटा का समय बचाकर प्रतिदिन गणित का अध्ययन करता रहता था। एक दिन ऐसा आया जब वही चार्ल्स फास्ट अमेरिका का प्रसिद्ध गणितज्ञ बन गया।

जितनी देर मे काफी उबलती, उतनी देर तक समय का उपयोग करके दार्शनिक लॉंगफेलो ने 'इनफरनो' नामक ग्रन्थ का अनुवाद कर डाला।

. . गेलेलियो ने अपने डाक्टरी जीवन की व्यस्तता में ही समय निकालकर दूरबीन का आविष्कार किया।

. . माइकेल फेराडे जिल्दसाज़ का काम करता था। खाली समय वैज्ञानिक प्रयोगों में लगाता और तरह-तरह के प्रयोग करके एकदिन जिल्दसाज मे एकाएक वैज्ञानिक वन गया।

श्री जवाहरलाल नेहरू जिनका जीवन राजनीतिक हलचलो और व्यस्तताओ मे उलझा रहता, केवल यात्रा के समय पुस्तको का अध्ययन कर संसार के श्रेष्ठ राजनीतिज्ञ ही नही, महान् साहित्यकार भी वन गये।

सच है, ज्ञान प्राप्ति के लिए समय की उतनी महत्ता नही है, केवल जीवित जिज्ञासा चाहिए। जिज्ञासा हो तो मनुष्य एक-एक क्षण अध्ययन करके भी महान् ज्ञानी वन सकता है।

संस्कृत की एक सूक्ति है—

"सततं गतिशीला हि मेरुं याति पिपीलिका
अगच्छन् वैनतेयोऽपि पदमेकं न गच्छति।"

निरन्तर चलती रहने पर चींटी भी मेरु पर्वत तक पहुँच जाती है, किन्तु पांव नहीं हिलाने वाला गरुड भी पास के वृक्ष पर भी नहीं पहुँच सकता। —●

२४

डरो मत !

एक अरबी कहावत है—"मौत भी भय के सामने पनाह मागती है।"

शरीर विज्ञान ने भय को प्लेग से भी अधिक संक्रामक बीमारी माना है।

भगवान महावीर ने निर्भयता का मन्त्र देते हुए कहा है—

न भाइयव्व, भयस्स वा वाहिस्स वा
रोगस्स वा, जराए वा, मच्चुस्स वा

—प्रश्नव्याकरण सूत्र २।२

डरो मत ! डर सबसे बडा खतरा है, भय से, व्याधि (मंद घातक कुष्ट आदि) से, रोग (शीघ्र घातक हेजा-आदि) से, बुढापे से, और तो, क्या मौत से भी कभी नही डरना चाहिये।

भीतो भूतेहिं घिप्पई—

—प्रश्नव्याकरण २।२

भयाकुल मनुष्य ही भूतो का शिकार हो जाता है।

इसी बात को वोनारो ओवर स्ट्रीट ने अपनी सुप्रसिद्ध पुस्तक—'अंडर स्टेंडिग फियर' मे भय के दुष्परिणामो की विस्तृत चर्चा करके बताया है—"भय प्लेग से भी बढकर सक्रामक रोग है। भय से मनुष्य की कार्यशक्ति क्षीण हो जाती है। भयभीत की स्मरण शक्ति नष्ट हो जाती है। द्वितीय महायुद्ध के दौरान में ब्रिटेन के प्रधानमन्त्री चर्चिल एक बार भय से इतने आक्रांत हुए कि उन्हे अपने निवास स्थान तक का पता याद नही रहा।"

"भय से मनुष्य के रक्त में रासायनिक परिवर्तन होते है और तरह-तरह की बीमारिया खडी हो जाती है। भय से रात भर में बाल सफेद होते देखे गये है। हृदयगति बन्द होने के तो अनेक उदाहरण आये दिन सुने जाते है।"

इसीलिए तो जैनशास्त्रो ने मृत्यु के दस कारणों में 'भय' को मुख्य कारण माना है।

महाकवि माघ ने कहा है—

'किमिव हि शक्तिहरं स साध्वसानाम्' भय के समान

शक्ति नाश करने वाला और कुछ भी नही है।

इसीलिए भगवान महावीर की वाणी है-भय से दूर हटो। अभय बनो। और दूसरों को अभय दो।

महाकवि निराला के शब्दो मे--

निर्भय हो, निर्भय मानव मन !
निर्भीक विचर पृथ्वी पर !

-●
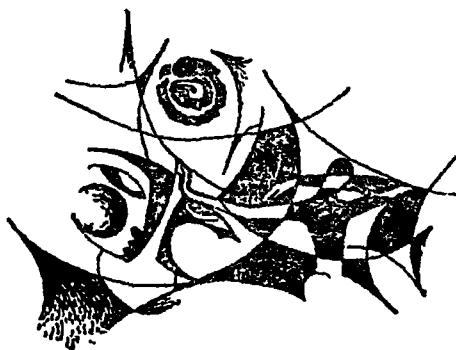
२५

यश सन्मान से दूर—आईस्टीन

भगवान महावीर ने कहा है—

" महयं पलिगोव जाणिया
जा वि वंदणपूयणा इह"

—सूत्रकृताग २।२।११

वंदना, पूजा, सन्मान आदि एक बहुत बडा दलदल है जो व्यक्ति इस दलदल में फस जाता है उसका उद्धार हो पाना कठिन है, अत. इससे बचते ही रहना चाहिए।

यही बात मानव धर्म शास्त्र के प्रणेता महाराज मनु ने कही है—

"सम्मानाद् ब्राह्मणोनित्यमुद्विजेत विषादिव"

—मनुस्मृति २।१६२

विद्वान सम्मान को विष की तरह समझकर उससे सदा डरता रहे।

वास्तव में जो अधूरा साधक है, अपूर्ण विद्वान है और कच्चा राजनेता है वही सम्मान, कीर्ति आदि के पीछे दौडता है। पहुँचा हुआ साधक, विद्वान और राजनेता सम्मान, यश आदिके पीछे नही दौडते। सम्मान अपने आप उन्हे खोजता आता है और वे उससे दूर हटते जाने की कोशिश करते है।

आईंस्टीन अपने युग का एक महान वैज्ञानिक तो था ही, पर एक आध्यात्मिक साधक भी था। सादगी और निस्पृहता उसके जीवन के कण-कण में रमी थी। भारत के मूर्धन्य वैज्ञानिक सर सी वी. रमण उनके आध्यात्मिक गुणो के कारण 'मिस्टर आइस्टीन' के बजाय उन्हे 'मनीषी आई स्टीन' कहते थे।

एक बार बेलजियम की महारानी ने आईस्टीन को अपने राजमहल मे निमन्त्रित किया। संसार प्रसिद्ध विद्वान के स्वागत मे राज्य की ओर से विशेष प्रबंध किया गया। स्टेशन पर महारानी के सचिव और चारो ओर खडे सैनिक आइंस्टीन के स्वागत की प्रतीक्षा मे खडे थे। जब ब्रुसेल्स स्टेशन पर गाडी पहुची तो अधिकारी खडे प्रतीक्षा करते रहे तभी एक रूखे से बिखरे केशोवाला अधेड व्यक्ति एक हाथ में सूटकेश व दूसरे हाथ मे वायलिन

का बक्स थामे राजमहल की ओर पैदल ही चल पड़ा।

सैनिक ढूंढ कर निराश हो गए। सोचा, शायद किसी कारण आईन्स्टीन नही आये है। वे इस निराशा का समाचार महारानी को सूचित कर रहे थे, और महारानी कुछ म्लानमुखी हो ही रही थी कि तभी एक विचित्र धूलि-धूसरित मनुष्य आता दिखाई दिया। साम्राज्ञी झुंझलाकर इस विचित्र नवागंतुक को बाहर निकालने की आज्ञा देने वाली ही थी कि अकस्मात् किसी ने आईन्स्टीन को पहचान लिया।

महारानी ने मुस्कराकर स्वागत किया—"वाह! डाक्टर आईन्स्टीन! आप भी खूब आए। आपको देखकर बड़ा आनन्द हुआ, पर स्टेशन पर मेरी मोटर और सेक्रेटरी गये थे, आप मोटर मे क्यो नही आये?"

"ओह मुझे तो ख्याल ही नही रहा कि आप मुझ जैसे व्यक्ति के लिए भी मोटर भेज सकती है। मैं तो यों ही इधर-उधर की सैर करता चला आया।"

महान् वैज्ञानिक की यह सादगी देखकर स्वयं महारानी चकित रह गई।

लोक प्रतिष्ठा मे बचने का एक और उदाहरण है आईन्स्टीन के जीवन का। एकबार वे प्रिन्स्टन कालिज

के अध्यापक का पद स्वीकार कर न्यूयाक गये। उन्हे देखने के लिए बन्दरगाह् पर अपार भीड जमा हो गई। आईन्स्टीन को मालूम हुआ तो वे न्यूयार्क मे स्टीमर के बन्दरगाह् पर लगने से पहले ही पिछले बन्दरगाह पर ही उतर गये। और चुपचाप कालेज पहुँच गये।

आडम्बर और तडक भडक रहित सादा और निस्पृह जीवन जीने वाले वैज्ञानिक ने अपने सुखी जीवन का रहस्य इन शब्दो मे बताया है—"मैं सुखी हूँ, क्योकि मुझे किसी से कुछ नही चाहिए न धन.. न सन्मान.. ।"

सचमुच धन व सन्मान से दूर रहने वाले आईन्स्टीन के चरणो मे लक्ष्मी और कीर्ति सदा लौटती रही।

२६ | उठो ! करो !

'सहसाकारिता'—जल्दबाजी जिस प्रकार आपत्तियों की जड है, उसी प्रकार चिरकारिता—आलसीपन या सोचते-सोचते कुछ न कर पाना भी विपत्तियों को निमन्त्रण दे डालती है।

जल्दबाजी करने वाला कार्य को गलत कर डालता है, तो आलसी काम को ही हाथ से निकाल देता है और ताकता रह जाता है। इसलिए समय पर उचित करने वाला ही सदा सुखी होता है।

शेखसादी के जीवन की एक घटना है। वे एक बार कुछ साथियों के साथ यात्रा पर निकले। उनके साथ एक नामी तीरन्दाज भी था। तीरंदाज अपनी शेखी बघारा करता था। एक दिन वे जंगल से गुजर रहे थे कि डाकुओं के एक दल ने उन पर धावा बोल दिया। सादी ने तीर-

न्दाज से कहा--"उस्ताद ! जरा अपना कमाल दिखाओ !

तीरदाज--"आने दो ! एक-एक को मार गिरा दूगा ।" और तीरदाज धनुष पर बाण चढाकर खडा हो गया। देखते-ही देखते डाकू आ धमके और लूट कर चलते बने। सादी ने उस तीरदाज को धिक्कारा--"बडे कायर निकले तुम ! एक को भी नही मार सके !"

तीरदाज ने दाढी पर हाथ फिराते हुए कहा--मैं क्या करता कोई मेरे निशाने पर आता ही न था। मै तो सोच ही रहा था कि किसे पहले मारू, किधर से मारूं कि वार खाली न जाय और इसी बीच मे वे आधमके, तो मेरा क्या कसूर ?"

सादी ने कहा-'ठीक है ! जो आदमी समय पर सही निर्णय कर काम नही कर सकता, वह भी भाग्य से इसी प्रकार लुट जाता है। समय का डाकू आ धमकता है यदि तुम देखते या सोचते रह गये तो वह तुम्हारी तकदीर को लूट कर चले जायेंगे, तुम्हारा ज्ञान, शक्ति और होशियारी धरी रह जायेगी।'

इसी आशय की ध्वनि भगवान महावीर की वाणी मे गूंज रही है--"**अच्चेइ कालो**"-काल-मौत आ रही है,

तुम तैयार हो जाओ !

उट्ठिए नो पमायए !"

—उठो ! प्रमाद आलस्य छोडकर अपना कार्य साध लो, वर्ना मौत का डाकू लूट कर चल देगा ! तुम्हारे तीर कमान धरे ही रह जायेंगे ।
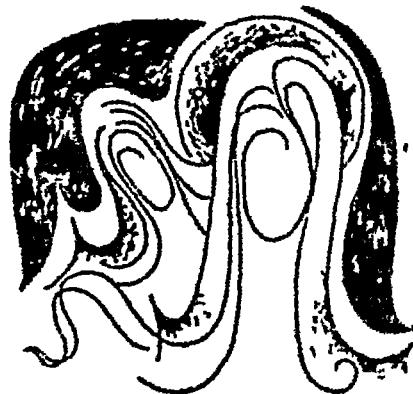
२७

गाली लौट आई

चाहे कोई विद्वान हो या मूर्ख ! जो दूसरो को गाली देता है, वह गाली लोट कर उसीके सिर पर बैठती है। बशर्ते कि सामने वाला क्रोध मे आकर उस गाली का स्वागत न करे, किन्तु उसे शातिपूर्वक अस्वीकार कर दे।

भारद्वाज ब्राह्मण ने जब बुद्ध को बुरी-बुरी गालिया सुनाई तो बुद्ध शातिपूर्वक उन्हे सुनते रहे। ब्राह्मण जब थक कर चूर-चूर हो गया तो बुद्ध ने पूछा—"प्रिय ! तुम यदि अपने मित्रो, मेहमानो के स्वागत मे उन्हे मिठाइयों के थाल भेट करो, और वे उसे स्वीकार न करे तो वे थाल किसके पास रहेगे ?"

आवेश मे आये ब्राह्मण ने कहा—"मैंने जो दिये वे तो लौट कर मेरे ही पास रहेगे।"

तो तुम्हारा यह गालियो का उपहार मैं स्वीकार नही करता ।"

भारद्वाज पानी-पानी होकर बुद्ध के चरणो में नत हो गया ।

रूपान्तर के साथ ऐसा ही एक प्रसग फ्रास के दो महान उपन्यासकारो के वीच घटित हो गया ।

एक दिन विक्टर ह्यूगो और अलेक्जेंडर ड्यूमा एक रास्ते में आमने सामने हो गए । ड्यूमा ने वातचीत के सिलसिले में ह्यूगो से एक प्रस्ताव किया—"क्यो न हम लोग आपस में मिलकर एक ऐसा उपन्यास लिखे जो अमर हो जाय ।"

ह्यूगो को प्रस्ताव पसन्द नही आया । वह झुझलाकर झिडकता हुआ सा वोला—"विल्कुल असभव ! कही घोडे और गधे का भी साथ हुआ है ?"

ड्यूमा ने स्थिर चित्त से शातिपूर्वक जवाव दिया—खैर, मेरा प्रस्ताव आपको पसद नही आया तो कोई वात नही, पर कृपा कर मुझे घोडा तो मत वनाइये ।"

क्रुद्ध ह्यूगो दांत काट कर चुप रह गये । उनकी झुझलाहट ने ही उन्हे गधा सावित कर दिया ।

२८ | गुरु

आज जिसे 'अध्यापक' कहा जाता है, भारत की सास्कृतिक भाषा मे उसे 'गुरु' का गौरव प्राप्त है। गुरु—शासको का भी शासक और देवताओ का भी देवता माना जाता है। एक श्लोक प्रसिद्ध है—

गुरु ब्रह्मा, गुरु विष्णु गुरुर्देवमहेश्वरा।
गुरु साक्षात् परब्रह्म तस्मायं श्री गुरुवेनमः।

इसमे गुरु को ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर की त्रिमूर्ति के रूप मे माना है।

उपनिषद् मे आचार्य को देव की भाति पूजने की शिक्षा दी है—

आचार्य देवो भव।

महर्षि अरविद ने एक बार कहा—अध्यापक राष्ट्र की सस्कृति के चतुर माली होते है। वे सस्कारो की

जड़ों मे खाद देते है और अपने श्रम से सींच-सींच कर महाप्राण शक्तिया बनाते है।"

गुरु के अधिकारप्रिय स्वभाव पर औरंगजेब की एक उक्ति प्रसिद्ध है। औरंगजेब ने अपने पिता शाहजहां को बंदी बनाया तो उनसे पूछा कि, आपकी क्या इच्छा है जो पूरी की जाय ?

शाहजहा ने कहा—"मैं चाहता हूँ कि मुझे पढाने के लिए कुछ बच्चे दे दिये जाय।"

औरंगजेब ने तीखे व्यंग्य के साथ कहा—"ओह! अब भी आप मे शहंशाही की बू है।"

गुरु के दो अक्षरो मे ज्ञान का तेज, और सदाचार की शक्ति का अद्‌भुत मिलन हुआ है। आज का गुरु-अध्यापक भी यदि अपने इन दोनो गुणों को अक्षुण्ण रखे तो गुरु का गौरव आज भी उसे प्राप्त हो सकता है।

-●

२६ | पृथ्वी की उत्पत्ति

भारतीय दर्शनों ने पृथ्वी की उत्पत्ति के सम्बन्ध मे अनेक प्रकार की विचित्र कल्पनाए की है। किसी ने अंडे मे, किसी ने कमल से और किसी ने अन्य प्रकार से इसकी उत्पत्ति बताई है। बुद्धिवादी चितक को उन कल्पनाओ से समाधान नही मिलता, वह विज्ञान की ओर दौडता है, पर आधुनिक विज्ञान की कल्पना भी पृथ्वी की उत्पत्ति के सम्बन्ध मे क्या वुद्धिवादी कही जा सकती है ? क्या बुद्धिजीवि चितन को उससे संतोष मिल सकता है ?

देखिए जेम्सजीन्स नामक लेखक ने 'मिस्टीरियस यूनिवर्स' नामक पुस्तक मे लिखा है--

कोई दो अरबसाल पहले अचानक एक तारा भटकते हुए सूर्य के निकट पहुँच गया। सूर्य और चन्द्र द्वारा जैसी लहरे पृथ्वी पर उठती हैं, वैसी ही भयंकर लहर उस

समय सूर्य मे उत्पन्न हुई, जो एक महान पर्वत की तरह ऊँची उठ गई और अगणित ऊंचाई तक ऊपर उठती चली गयी। कुछ समय बाद यह पर्वताकार लहर फूटी और असंख्य टुकडों मे चारो तरफ बिखर गयी। बाद में ये टुकड़े ठोस हो गये और सूरज के आस-पास घूमने लगे। यही हजारो ग्रह-उपग्रह है जो अन्तरिक्ष मे नजर आते हैं, हमारी पृथ्वी भी इन्ही मे मे एक है।"

इन्ही कल्पनाओ की दौड से निकलकर जैनदर्शन ने एक तटस्थ ठोस चितन दिया है।

"यह जगत् जीव और पुद्गल का संगम-स्थल है[1] न इसकी आदि है, और न अन्त! पुद्गल संरचना की दृष्टि से यह बदलती अवश्य रही है, अनेक अवस्थाओ में मे गुजरी है, पर एक दिन इसकी उत्पत्ति की कल्पना करना मात्र कल्पना है।"

पृथ्वी की आधार भूमि और उसके आधार के सम्बन्ध मे भी संसार मे अनेक प्रकार की धारणाएं चलती आई है। तिब्बत के लामाओ को विश्वास था कि पृथ्वी किसी मेढक की पीठ पर रखी हुई है।

---

१ सूत्रकृतांग .१।१.

प्राचीन हिन्दुओ का विश्वास था कि पृथ्वी हाथियों की पीठ पर खडी है और हाथी कछुए की पीठ पर खडे है।

अरब का भूगोलवेत्ता एड्रसी पृथ्वी को अण्डे के आकार की मानता था और उस अण्डे का आधा हिस्सा पानी मे डूबा हुआ मानता था। आठवी शताब्दी के बनरेबुल बीडी नामक भूगोलवेत्ता ने भी एड्रसी की मान्यता का समर्थन किया है।

दूसरी शताब्दी के भूगोलवेत्ता टोलेमी ने पृथ्वी को खरबूजे या विलायती बैंगन (गोल) के आकार की बताई थी।

कोलम्बस ने पृथ्वी को शख के आकार की सिद्ध की।

प्रसिद्ध भू-विज्ञान शास्त्री मार्शल गार्डनर ने अपनी खोजो के आधार पर बताया है कि पृथ्वी एक खोखला पदार्थ है, जो ध्रुवो के पास खुला हुआ है। इसका छिलका ८०० मील मोटा है।[1]

इस प्रकार असख्य आश्चर्यो की जननी पृथ्वी असख्य काल मे एक आश्चर्य एव पहेली बनी हुई है। वैज्ञानिक अपने-अपने अनुमान से उसकी आकृति एव आयु, उत्पत्ति की कहानी आदि निश्चित करते है पर उसे ही अतिम सत्य मान लेना- सत्य का गला घोटना होगा।

---

१ नवनीत १९५६, दिसम्बर पृ०-३४

३० | सन्त का दिल

महाकवि फिरदोसी ने अपनी कविता मे लिखा है—

"दाना ढोने वाली चीटी को भी मत सता! उसके भी जान है, और जान बड़ी मूल्यवान चीज है।"

वास्तव मे जो अपनी पीडा को समझता है, वह दूसरो के साथ उसकी तुलना करेगा तो उसे लगेगा, एक चींटी को भी किसी के पैर के नीचे आने पर उतना ही कष्ट होता है, जितना हाथी के पैर नीचे कुचले जाने पर उसे स्वयं।

कहते है एक बार हजरत शिबली किसी दुकान से गेहूँ का एक बोरा अपने कंधे पर डाल कर घर लाये।

हजरत ने अपने गांव मे घर पर पहुंच कर बोरा रखा तो, देखा कि एक चीटी उस बोरे मे इधर से उधर भागती

हुई बडी परेशान हो रही है। हजरत ने उसकी आकुलता समझी। वे चीटी को सभाल कर उलटे पैरो उस दुकानदार के यहा पहुंचे और गेहू के ढेर पर चीटी को छोड़ते हुए बोले—"यह नन्ही सी जान अपने घर और परिवार से बिछुड़ कर तडफती रहे, और मैं देखा करू—यह मेरी इन्सानियत को बर्दास्त नही हो सकता।"

वास्तव मे संत का दिल ऐसा ही होता है।

—●

३१

जान से अधिक नहीं

बगदाद के हजरत उमर बिन अब्दुल अजीज के पास एक बहु मूल्य हीरे की अंगूठी थी। उसका मूल्य आकने में बडे बडे जौहरी भी असमर्थ थे।

एकबार बगदाद मे भयंकर अकाल पडा। लोगो के चांद से चेहरो पर जैसे ग्रहण लग गया। समस्त प्रदेश भूख से त्राहि-त्राहि कर उठा! बादशाह ने अपना खजाना खोल दिया, मगर कुछ दिनो में वह भी खाली हो गया। आखिर हजरत उमर ने अपनी अगूठी निकाल कर एक दरबारी को दी और कहा-"जाओ, इसे बेच डालो, और जो धन मिले उससे अन्न मगा कर भूखी प्रजा में बांट दो।"

दरबारियों ने कहा-"हजरत! आप यह क्या करते

है ? अकाल तो कुछ दिनो में खत्म हो जायेगा, लेकिन ऐसी अमूल्य चीज पुन: नही मिलेगी।"

हजरत ने रुंधे कंठ से कहा—"क्या यह अंगूठी किसी इन्सान की जान से भी अधिक प्यारी है ? अंगूठी जाकर यदि इन्सानो की जान बच सके तो एक बादशाह के लिए इससे अच्छी बात और कुछ नही हो सकती।"

कहते है उस अंगूठी के धन से पूरे राज्य की जनता को सात दिन का पेट भर अन्न प्राप्त हो गया। और लाख अंगूठी मे भी अधिक मूल्यवान कीर्ति हजरत को मिली इस संसार मे।

३२ | सुख की कीमत

एक सम्राट नौका में बैठकर समुद्र यात्रा कर रहा था। साथ में अनेक कर्मचारी व सेवक भी थे। समुद्र की पहाड-सी ऊपर उठती लहरों को और उनकी थपेड़ो मे डगमगाती नौका को देखकर एक सेवक मारे भय के पीपल के पत्ते की तरह थरथर कांपने लगा। समुद्र की गर्जना सुनकर तो वह जोर-जोर मे चीख उठा।

लोगो ने उसे बहुत समझाया, पर उसका भय कम नही हुआ। वह तो लहरों का उतार चढ़ाव देखकर बेहोश हो होकर गिर पडता।

सम्राट ने आदेश दिया—"इसे समुद्र में डाल दो", सेवक को समुद्र में डाल दिया गया, वह गोते खाने लगा लहरो के थपेड़ों से मार खाकर जोर-जोर से चीखने लगा।

सम्राट की आज्ञा हुई, पुन: उसको पकड कर निकाला गया, अब वह चुपचाप नौका में एक किनारे जा बैठा।

लोगों को इस परिवर्तन का रहस्य समझाते हुए बुद्धिमान सम्राट ने कहा—"इसने अब समुद्र में डूबने का दुःख पहचान लिया है, अत अब नौका पर बैठने का सुख अनुभव कर रहा है, जब तक मनुष्य दु.ख नही भोगता सुख की कीमत नही कर सकता।" —●
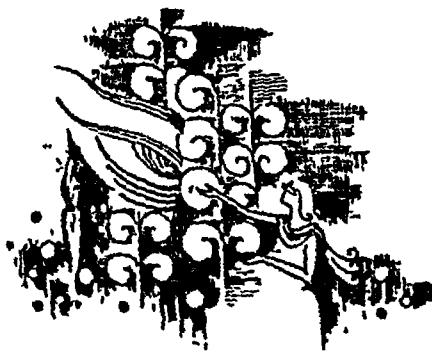
३३ | शांति का उपाय

चिंता-पिशाचिनी से भी अधिक त्रासदायिनी है। चिंता ग्रस्त मानव की कितनी दुर्दशा होती है, जीवन कितना संकटमय बन जाता है, और फिर उस चिंता से मुक्ति कैसे मिले, चिंता-मुक्त जीवन मे कितना आनन्द और उल्लास लहराने लगता है, इसका एक उदाहरण देखिए-अमेरिका के धन कुबेर डी राकफेलर के जीवन से।

संसार का सबसे बडा धनी डी. राकफेलर बहुत ही अधिक चिंताशील एवं आशंका वाला व्यक्ति था। चिंताओं के कारण पचास वर्ष की उम्र में उसका शरीर इतना जर्जर हो गया था कि वह रातदिन बिस्तरे पर पड़ा रहता। डाक्टरो ने उसके जीवन से निराशा व्यक्त करदी और कह दिया—यदि वह चिंताओं से मुक्त नहीं होगा तो

किसी भी समय उसकी हृदयगति बन्द हो सकती है।

राकफेलर के जीवन में सहसा एक नया मोड आया। व्यापार व धन की चिता से उसने पिड छुडाया, गरीबो को देना शुरू किया, विद्यार्थियो व विद्वानो का सहयोग प्रारम्भ किया। सदा प्रसन्न रहने लगा--और इस चिता-मुक्ति का प्रभाव उसके जीवन पर पडा। पचास करोड डालर का स्वामी होने पर जो चैन उसे नही मिला, वह अब उसे दान करने मे मिलने लगा। राकफेलर स्वस्थ ही नही हुआ, किन्तु पचास वर्ष मे मृत्यु के सिरहाने पर बैठने वाला ९३ वर्ष की स्वस्थ व सुखी आयु भोगकर प्रसन्नतापूर्वक ससार से विदा हुआ। —●

३४ | छह स्वर्णसूत्र

एक पाश्चात्य विचारक 'डेवी' ने जीवन दृष्टि को स्पष्ट करने वाले छह विचार सूत्र कहे है। जीवन के लिए वे अमूल्य होने के कारण मैं उन्हे स्वर्ण सूत्र मानता हूं। वे यो है—

* शक्ति सम्पन्न व्यक्ति की शक्ति का नाश कर आप किसी कमजोर व्यक्ति को शक्तिशाली नही बना सकते हैं।

* बडे आदमी को नीचा दिखाकर आप किसी ओछे आदमी को बड़ा नही बना सकते है।

* मालिक को नुकसान पहुँचाकर मजदूर का कोई लाभ नही कर सकते हैं।

* वर्गभेद को (जातिवाद) को प्रोत्साहन देकर आप

भाई चारे और मनुष्यता की भावना का प्रसार कभी नही कर सकते है।

* अमीरो का नाश कर आप गरीबो को कोई फायदा नही पहुँचा सकते है।

* दूसरो का उत्साह और स्वतन्त्रता छीनकर आप चरित्रनिर्माण नही कर सकते है।

वास्तव मे यही जीवन-दृष्टि भगवान महावीर ने 'मधुकर' की उपमा से दी है—

"जैसे भौरा फूलो को बिना नुक्सान व हानि पहुँचाए अपना जीवन रस प्राप्त करता है, वैसे ही समाज, राष्ट्र एव विश्व जीवन मे सर्वत्र आप दूसरो के अहित से बच कर अपना लाभ कर सकते है। किन्तु दूसरो को हानि पहुँचाकर लाभ करने की कल्पना मात्र एक दिवा-स्वप्न है।"

—●

३५

सत्पुरुष का कर्म

सत्पुरुष प्रदर्शन- प्रिय नही, स्व- दर्शनप्रिय होते है, वे जीवन व्यवहार मे सीधे-सादे एव आडम्बर रहित होते है किन्तु अन्तर्जगत में महान कर्मनिष्ठ एवं दैवी विभूतियो से अलकृत होते है।

टालस्टाय के जीवन का एक मधुर प्रसंग है। एक वार वे अतिसाधारण कपडे पहने किसी स्टेशन के प्लेटफार्म पर घूम रहे थे। एक स्त्री ने उन्हे कुली समझकर बुलाया, और कहा—ए ! देख यह पत्र लेकर सामने होटल में मेरे पतिदेव ठहरे है, उन्हे दे आ ! तुझे दो रूवल दे दूगी '' टालस्टाय ने चुपचाप उसका काम कर दिया और दो रूवल ले लिया !

कुछ क्षणो वाद टालस्टाय के एक मित्र उधर से

निकले और 'काउण्ट !' सम्बोधन कर उनका अभिवादन किया ।

महिला ने साश्चर्य कुली से दीखते उस सज्जन का परिचय पूछा तो मित्र ने बताया–'अरे आप नहीं जानती ? ये है लियो टालस्टाय !'

महिला को काटो तो खून नही ! उसने अत्यन्त नम्रता से क्षमा मागते हुए कहा–"कृपया क्षमा करे ! मैंने आपका बहुत अनादर किया, मुझे रूबेल लौटा दीजिऐ । हंसते हुए टालस्टाय बोले–' देवी जी, क्षमा करना तो परमात्मा का काम है, मैंने तो काम करके पैसे लिए है, इसमें कोई अनादर की वात नही है और फिर वापस लोटाऊ क्यो ?'

वास्तव मे सत्पुरुष श्रम करने मे कभी सकुचाते नही, वे न अपने वडप्पन का प्रदर्शन करते है और न कोलाहल! वे चुपचाप सघन मेघ की तरह वर्षते जाते हे ।

–●

३६

दुख का किनारा

जो अपने कष्टो को साहस के साथ भोगता है, वह उनसे शीघ्र ही किनारा पा लेता है। और किनारे पर आकर देखता है कि अब जबकि उसे सुखो की कोई परवाह नही है, सुख उसके चरण चूमने लगते है।

आधुनिक युग के महान प्रतिभाशाली बर्नार्डशा के जीवन का यह सस्मरण इस सत्य का साक्षी है।

शा ने अपनी आत्मकथा मे उन दिनो की एक तस्वीर खीची है जब वे इसी प्रतिभा का मूल्य कराने बाजारो में भटकते थे :—

"मेरी घिसी पतलून घुटनों पर से गुब्बारो की तरह फूली रहती थी, पावो की दसो अंगुलिया जूतो मे से यो निकली हुई थी कि जैसे खिडकियो में से झांकती हो। और

कोट का रंग तो इतना बदरंग हो चुका था कि याद भी न था कि उसका असली रंग क्या था ?"

इन विषम परिस्थितियो से जूझते हुए शा जब एक दिन सफलता के उच्च शिखर पर पहुचे तो सिद्धिया उनके चरण चूमने लगी, पर तब उन्होने उन सिद्धियो को भी दुत्कार दिया। एक दिन जब बर्नार्ड शा को नोबेल पुरस्कार देने का प्रस्ताव किया गया तो शा ने बडी निस्पृहता से अस्वीकार करते हुये कहा—

यह पुरस्कार किसी डूबते को बचाने के लिए फेंका हुआ लाइफबॉय है, पर यहा तो यह उस समय फेंका गया है, जबकि जो डूब रहा था वह सारे-तूफान भंवर पार करके किनारे आ चुका है।"

सच है तूफानो मे लडने वाले को तूफान ही किश्ती बन जाते है। दुखो से सघर्ष करने वाले के लिए दुख ही सुख बन जाते है, फिर क्या जरूरत है किश्ती की, और क्या जरूरत है सुख के प्रलोभन की।

रघुराजा का आदर्श

प्राचीन राजा—शासन के स्वामी बनकर नही, किंतु प्रजा के पालक बन कर राज्य का संचालन करते थे। उनके जीवन में सत्ता, या आनन्द मुख्य नही थे, मुख्य था, प्रजा को आदर्शों की प्रेरणा और स्वयं के जीवन को जनहित में समर्पित करना।

रघुवंश के प्रारम्भ में कवि-गुरु-कालिदास ने रघु राजाओं के आदर्शो की चर्चा करते हुए लिखा है—

....सोहमाजन्मशुद्धानामाफलोदय-कर्मणाम्

....त्यागाय संभृतार्थानां,सत्याय मित भाषिणाम्।

....वार्द्धके मुनिवृत्तीनां योगेनान्ते तनुत्यजाम्।

जिन के चरित्र आजन्म शुद्ध और पवित्र रहे, जो किसी काम को उठाकर उसे पूरा करके ही छोड़ते थे।

जो दान करने के लिए ही धन संग्रह करते थे, सत्य की रक्षा करने के लिए ही मित भाषण करते थे, बुढापे मे विषयो का त्याग कर मुनियो का-सा जीवन जीते थे और अन्तिम समय मे योगसाधना में लीन होकर देह छोडते थे।

आज के शासक या नेता क्या इन आदर्शो की ओर ध्यान देगे ?
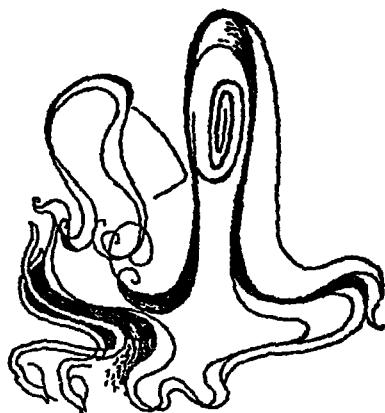
तिहरे खाते

एक पुरानी कहावत थी—"कागजो मे हमेशा सच्चा रहना चाहिए।" अर्थात् व्यापारी को अपने वही-खातों मे कभी झूठ नही लिखना चाहिए। यह भी कहा जाता था—झूठे-वहीखाते रखने से लक्ष्मी अप्रसन्न हो जाती है।

पर आज का युग तो झूठ का ही ठहरा। एक नम्बर और दो नम्बर खाते के विना कहते है व्यापार भी नही चलता। पर अब तो झूठ इससे भी आगे बढ रहा है और दो नम्बर ही नही, तीन नम्बर के खाते भी चल पडे है।

एक वडी फर्म मे एकाउण्टेण्ट की जरूरत थी। अनेक लोग इन्टरव्यू के लिए आए। एक एकाउण्टेण्ट उम्मीदवार से मालिक ने पूछा—"आप आजकल के अगरेजी ढंग का दोहरे इन्दराज वाला खाता रख सकेंगे ?"

हाजिर जवाब आवेदक ने उत्तर दिया—"दोहरे इन्द-राज का ही नहीं, मैं तो आजकल के तिहरे इन्दराज वाला खाता भी रख सकता हूँ।"

मालिक ने आश्चर्यपूर्वक पूछा—तिहरा इन्दराज .. ?

हा, एक आपके लिए जो सही मुनाफा वताये, दूसरा आपके साझीदार के लिए जो थोडा-सा मुनाफा बताये और तीसरा इन्कम-टेक्स के लिए जो घाटा दिखाये।

मालिक ने प्रसन्न होकर आवेदक को तुरन्त कुर्सी पर बिठा दिया।

—●
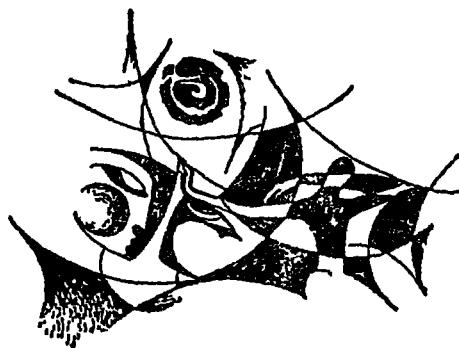
३९ | त्रिकोण

"अपने आपको कैसे देखूं ?"—साधक इस असमंजस में पड़ा उलझ रहा था।

गुरु ने कहा—"तू अपने को परख, तीन कोण से अलग-अलग अपनी सही स्थिति को देख जैसे कि जौहरी हीरे को अलग अलग कोणों से देखता है।"

साधक—"गुरुदेव ! बतलाइए तीन कोणों से कैसे अपने को देखूं ?"

गुरु—सर्व प्रथम अपने पड़ोसी, पुत्र पत्नी जिसे भी सबसे नजदीक का समझता है, उसके सामने अपने को खड़ा कर और सोच तू उसे अपना कौन रूप दिखाना चाहता है ? वह रूप तेरे पास है या नहीं ? या केवल उसका नाटक ही रच रहा है ?"

नल्वे

फिर अपनी चेतना—अपने अन्तर्यामी मन के सामने स्वयं को खडा करके देख, कही स्वय से छिपकर तो नही जी रहा है। मन के प्रकाश मे स्वयं को देख।

फिर सपूर्ण आस्था के साथ ईश्वर के समक्ष अपने को निरावरण करदे। बाहर के पर्दे हटा दे और देख—उस सर्वज्ञ प्रभु से कुछ छुपाने का दुस्साहस तो नहीं कर रहा है।"

यदि इस त्रिकोण से अपने को ईमानदारी के साथ देखता है तो तू स्वयं को पूर्ण रूप से और सही रूप से देख सकता है।" गुरु के समाधान पर साधक ने प्रसन्नभाव से आचरण शुरु किया।

—●

सुखी जीवन का मूल मन्त्र

बचपन मे जब हमने वर्णमाला पढी थी तो प्रत्येक वर्ण एक-एक ही पढा था पर वर्णमाला के अन्तिम वर्ण में—"श. ष स" तीन बार पढा। आखिर उसका रहस्य क्या है ? एक ही वर्ण तीन बार क्यो ? इस विचार में जब गहरा उतरा तो आगे के वर्ण 'ह' पर दृष्टि टिकी। प्रत्येक पीछे के वर्ण के साथ 'ह' को आगे रखा तो एक चमत्कारी अर्थ व्यंजित हो उठा—"श ह, ष ह, स ह" इसका अर्थ हुआ—सहन करो। एक बार नही, दो बार नही, तीन बार। बस तीन बार सहन करने की शक्ति आ गई तो वर्णमाला का ज्ञान सार्थक हो गया, जीवन एक अपूर्व आनन्द से भर उठा। इसी भाव को व्यक्त करने वाली एक जापानी लोक कथा है—

सत्रहवी शताब्दी मे जापान राज्य के मंत्री थे—

विस्मय विमुग्ध सम्राट् वृद्ध मन्त्री की रहस्यमयी आँखों मे झाकने लगे तो धीमी आवाज से ओ-चो-सान बोले—"महाराज ! मेरे परिवार की एकता व सौहार्द का यही एक महामन्त्र है । इस महामन्त्र को जितनी वार दुहराया जाय एकता का धागा उतना ही अधिक सुदृढ होता जायेगा।'

—●
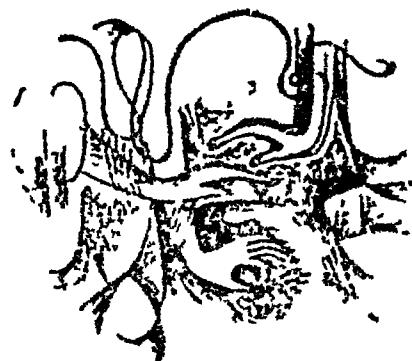
४१ | लक्ष्मी और सरस्वती

एक दिन लक्ष्मी और सरस्वती सत्पुरुष के पास आई और आश्रय देने के लिए प्रार्थना करने लगी।

सत्पुरुप ने दोनो का परिचय पूछा, तो लक्ष्मी ने कहा—"मैं जिस पुरुप के पास जाती हू उसे अत्यन्त सुख देती हू, उसका सन्मान बढाती हू, किन्तु मैं अधिक दिन किसी एक के पास स्थिर नही रह सकती। मुझे घूमते रहने मे और भिन्न-भिन्न पुरुषो का सपर्क करने मे आनन्द आता है।"

सरस्वती ने अपना परिचय देते हुए कहा—"महाराज! मुझे प्राप्त करने मे पुरुष को कष्ट उठाना पड़ता है, प्राप्त करने के बाद भी उसे सुख मिले या नही, यह भी निश्चित नही, किंतु उसकी कीर्ति अवश्य ही दिग्दिगन्तो को छूने लगती है, और मैं जिसको एक बार चुन लेती हू, जन्म भर

तक उसका साथ नही छोड़ती ।".

सत्पुरुष ने लक्ष्मी की ओर उपेक्षित भाव से देखा और सरस्वती का प्रेम पूर्वक अभिनन्दन कर हृदय-मदिर को पवित्र करने की प्रार्थना की।

४२
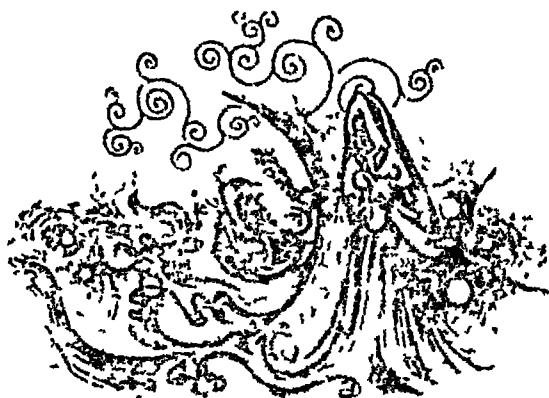
सफलता का रहस्य

एक वृद्ध धनी व्यक्ति से किसी युवक ने पूछा–"आपकी सफलता का रहस्य क्या है ?"

वृद्ध मनुष्य ने गम्भीरता के साथ जबाब दिया–"धैर्य और प्रतीक्षा ! इनके सहारे ससार की कोई भी मुश्किल आसान की जा सकती है।"

प्रश्नकर्ता ने मुस्कराते हुए कुछ शरारत से धनी वृद्ध की ओर देखा—लेकिन, एक कार्य ऐसा भी मुश्किल है, जो आप कितना ही धीरज रखिए आसान नही कर सकते।"

"क्या ? वृद्ध ने आश्चर्यपूर्वक पूछा

"चलनी मे पानी भर कर ले चलना !"–युवक ने जरा ठिठोली-सी मुद्रा बनाई।

"वह भी संभव है, मित्र !—"वृद्ध ने गम्भीर होकर

कहा—धैर्य के साथ तब तक प्रतीक्षा करो, जब तक कि पानी जमकर बर्फ न हो जाय।"

सचमुच धैर्य और साहस के साथ समय की प्रतीक्षा करने वाला किसी भी क्षण को स्वर्णमय बना सकता है, असम्भव को सम्भव कर दिखा सकता है।

—●

४३

कविता ने देवत्व जगा दिया

मनुष्य स्वभाव से दानव नही, देव है। युग की हवाओ मे बहकर, विचारो का दास बनकर या परिस्थितियो के हाथ कठपुतली बनकर वह अपना देवत्व खो बैठता है और दानवी चोगा पहन लेता है। सत्साहित्य मनुष्य के इस अन्तरग दानव को ललकारने मे सर्वाधिक सक्षम है। वह उसके अन्तरतम के उस कोमल-भाग को जिसमे दया, करुणा व प्रेम का देवता सोया रहता है, सहलाकर जगाता है। उसके दिव्य भावो को स्पदित कर मन को प्रबुद्ध करता है।

नादिरशाह की क्रूरता और निर्दयता इतिहास प्रसिद्ध है। दिल्ली के सिहासन पर अधिकार कर उसने वहा कत्लेआम का हुक्म दे दिया था। हजारो निरपराध बालक व रमणिया मौत के घाट उतारे जा रहे थे। दिल्ली मे

खून की नदी बहने लगी थी, तब साहित्य के बाण ने ही उसके अन्तर में सुप्त देवत्व को जगाया था और कत्ले-आम बन्द करने का हुक्म दिया।

दिल्ली के बादशाह का एक वजीर था, बड़ा रसिक व साहित्य प्रेमी था वह। जब उसने देखा कि नादिरशाह का क्रोध किसी तरह शात नही हो रहा है, और कोई भी व्यक्ति उसके सामने जाने का साहस नहीं कर रहा है, तो वजीर जान हथेली मे रखकर नादिरशाह के पास पहुचा और उसने एक शेर पढा—

कसे न मांद कि दीगर ब तेगे नाज कुशी।
मगर कि जिंदा कुनी खल्क रा व वाज-कुशी॥

—तेरे प्रेम की तलवार ने अब किसी को जिंदा नहीं छोडा है। अब तो तेरे लिए इसके सिवाय और कोई उपाय नही है कि तू मुर्दों को फिर जिलादे और फिर से उन्हें मारना आरम्भ कर दे।

इस शेर को सुनते ही कातिल नादिरशाह के दिल का मनुष्यत्व जाग उठा, और तुरन्त उसने कत्लेआम बन्द करने का हुक्म दे दिया।

४४

कह दूँगा

देखा जाता है, प्राय सर्वत्र धन और सत्ता की पूजा होती है ! बडे-बडे गुणियो को कोई पूछता भी नही, और पैसे वालो को चाहे वह कैसा भी हो, लोग लबी सलाम करते है । जब पैसा उनके पास नही था तो कोई पूछता न था, पर पैसा हुआ तो उन्हे ही परमेश्वर मानने लग गये ।

कानपुर मे एक मियाँ अब्दुल्ला-इल्म नामक चमडे के बडे व्यापारी थे । पहले उनकी हालत बहुत ही खराब थी, सडको पर भटकते, जूते गाँठते, पर कोई पूछता तक नही । फिर चमडे के व्यापार मे काफी पैसा कमाया । स्वभाव से भी मिलनसार और उदार थे। मागनेवाला कभी खाली हाथ नही लौटता । उनकी एक विचित्र आदत थी कि कोई भी उन्हे सलाम करता तो उत्तर मे झुक कर

कहता–'कह दूगा ।'

इस 'कह दूगा' का अर्थ किसी की समझ मे नही आता। एक वार उनके एक घनिष्ठ मित्र ने 'कह दूंगा' का अर्थ पूछा। मियाँ मित्र को साथ लेकर एक कमरे में पहुँचे। वहाँ कई ताले लगे थे। उसे खोला। भीतर में तिजोरियां रखी थी। उनकी ओर सकेत करके बोला–"इन्ही के कारण लोग मुझे सलाम करते है, अत मैं भी कह देता हूँ जिसके कारण तुम मुझे सलाम करते हो, उसे मैं कह दूंगा।"

४५

मानव देह का मूल्य

धर्मशास्त्र और नीतिशास्त्र में मानव की श्रेष्ठता का मुक्त हृदय से बखान किया गया है। ससार की सर्वश्रेष्ठ और अत्यन्त दुर्लभ वस्तु कुछ है तो वह है—मानव देह।

पर, क्या यह महत्व मात्र मानव देह का है ?

नही, यह है उस देह रूप मदिर में रहने वाले मानव-देवता का। यदि मानवता नही है, तो देह—एक मिट्टी का लोदा मात्र है। मिट्टी का भी कुछ उपयोग हो सकता है, पशु-पक्षियो की मृत-देह का भी विविध उपयोग होता है, पर मानव-देह का तो कुछ भी मूल्य नही।

लदन के एक डाक्टर थामस लोसन ने मानव-देह मे स्थित रासायनिक द्रव्यो का पृथक्करण करके बताया है कि

उसके पृथक किए हुए सब द्रव्यों की कुल कीमत केवल पांच शिलिंग है।

सामान्यत: मानव शरीर के रासायनिक पदार्थों का परिमाण इस प्रकार है—

१. दस गैलन पानी।

२ कपड़ा धोने के साबुन की सात बट्टियों के बराबर चर्बी।

३. नौ जार पैंसिलों के बराबर कार्बन।

४ दो हजार दो सौ दियासलाई की तीलियों के बराबर फास्फोरस।

५. एक छोटी कील बनायी जा सके इतना लोहा!

६. एक कुत्ते के शरीर में स्थित पिस्सुओं को नष्ट कर सके उतनी गंधक।

७ मुर्गी रखने के एक पिंजरे पर सफेदी की जा सके उतना चूना।[1]

---

१. नवनीत, नवम्बर १९५३, पृ० ४८

४६ | फिल्म का प्रभाव

फिल्म आज के सभ्य समाज के मनोरजन का प्रमुख साधन है और सरकार के 'मनोरजन कर' की आय का भी। पर इस फिल्म प्रदर्शन का जीवन पर कितना गहरा असर होता है यह भी किसी से छिपा नही। अक्सर फिल्मो मे, प्रेम, रोमास, हत्या, डाका, चोरी आदि की कहानिया रहती है और उनसे निश्चित ही जीवन में अपराधो की प्रेरणा जगती है, उत्तेजना मिलती है, मन-अनाचार एव अनैतिक आचरण के लिए प्रशिक्षित हो जाता है। नासमझ युवक और अबोध बच्चे सिनेमा देख कर हाल से बाहर निकलते ही नायक की तरह घृणित एव अनैतिक चेष्टाए करने लगते है।

सिनेमा के दुष्प्रभाव की ये देखिए कुछ घटनाएं—कुछ वर्ष पहले मध्य प्रदेश के जबलपुर जिले मे हथियार बन्द

डाकुओं के एक दल ने दिन दहाडे डाका डाला। पकडे जाने पर डाकुओ ने अपने बयान में बताया—"इस दुःसाहस की प्रेरणा उन्हे कई स्टंट फिल्मे देखने से मिली।"

एक बार लंदन की एक अदालत में एक सोलह् वर्षीय युवक पर हत्या का मुकदमा चला। लडके ने अपने बयान में कहा—"मैं सप्ताह् में तीन दिन हत्या और डाकेजनी की फिल्मे देखता हूँ। क्योकि वे मुझे बहुत पसन्द है!"

न्यायालयो मे इस प्रकार के बयान प्रतिदिन सुनने को मिलते हे कि "उसे अमुक फिल्म से प्रतिहिसा की प्रेरणा मिली, प्रेमिका को उडाने की तरकीब सूझी या पिस्तोल जेब में रखकर आतक पैदा करने की भावना जगी।"

विश्व के मानमशास्त्रियो का मत है कि—कुरुचिपूर्ण फिल्मो का समाज के नैतिकपक्ष पर बहुत ही बुरा प्रभाव पड रहा है। इसके दुष्परिणाम बडे ही घातक होंगे। अत. देश मे इस प्रकार की फिल्मो के प्रदर्शन सर्वथा बद होने चाहिए—जिनसे मनुष्य को अनैतिक आचरण की प्रेरणा मिलती हो।

अमेरिका में अपराधों की प्रेरणा की जांच के लिए अपराधियो मे कुछ एक समान प्रश्न पूछे गये जिनके उत्तर

इस प्रकार आये—४६ प्रतिशत अपराधियो ने कहा–फिल्म देखकर उन्हे भरी हुई पिस्तोल रखकर चलने की प्रेरणा मिली । २८ प्रतिशत ने फिल्म देखकर लूटपाट की इच्छा जगी बताई । २० प्रतिशत ने फिल्म देखकर चोरी का धंधा चुना ! कुल ६० प्रतिशत अपराधियो का जीवन फिल्मो से प्रभावित और प्रेरित पाया गया ।[1]

---

१ नवनीत १६५३ अगस्त पृ ६५

४७

विश्व-मानव

- जो मानव सिर्फ अपने हित और लाभ की चिता में है—वह मानव नही, कोई क्षुद्र जीव है। मानव वह है जिसमें विराट् मानवता का सकल्प हो। जो सबके सुख में सुखी और सबके दुख में दुखी हो, मानवता के साथ जिसका अस्तित्व जुडा हो और जिसके अन्दर से प्रतिपल यह ध्वनि गूंज आती हो–सर्वे भवन्तु सुखिनः–समस्त प्राणी सुख एव कल्याण का अनुभव करे। जो अपने सत्कर्मों की सुवास से समग्र जगत को सुरभित करदे वही मानव वास्तव में विश्व-मानव है।

डा० तहाहुसेन जो कि आधुनिक विश्व-मनीषा के प्रबुद्ध स्रष्टा है और जिनके लिए एल्डुअस हक्सले ने कहा है—"बीसवी सदी ने पाँच मानव दीप-स्तम्भ पैदा किये है–गांधी, आइन्स्टीन, स्वाईत्जर, अरविंद और तहाहुसेन।"

उन्होंने विश्व-मानव की भूमिका स्पष्ट करने वाली एक अरबी बोधकथा लिखी है—

६ हजार वर्ष पूर्व मिस्र मे एक महान दानी राजा हुआ 'नकिवेन'। उसका हृदय अत्यन्त उदार व मानव-कल्याण की भावनाओ से ओतप्रोत था।

नकिवेन की अगाध ज्ञान गरिमा और सच्चरित्र पर प्रसन्न होकर नील के देवता ने राजा को एक तलवार दी और कहा—"राजन्! मैं तुम्हारे पर प्रसन्न हू, ले यह तलवार। इसे लेकर तू विश्व विजयी बन।"

निस्पृह नकिवेन बोला—"प्रभो! मुझे यह तलवार नही चाहिए। विश्व-विजय करके मै क्या पाऊँगा?"

"अच्छा, तो ले, यह पारस पत्थर। तू देवताओं से भी अधिक धन एकत्र कर।"

"प्रभो! अपरिमित धन पाकर मै अन्तत क्या करूंगा?"

"तो ले, यह स्वर्ग की सबसे सुन्दर अप्सरा। जीवन का स्वर्गीय सुख भोग।"

"मगर प्रभो! अप्सरा पाकर भी मैं जीवन का कौन सा सुख पा लूगा? वह कोई अपूर्व सिद्धि है''?"

नील देवता ने आखिर एक फूल का पौधा दिया और कहा—"ले यह पौधा जहाँ उगेगा वहाँ के जड़-चेतन, शत्रु-मित्र सभी को मीठी सुगन्ध से आपूरित कर देगा।"

ज्ञानी नकिवेन ने प्रसन्नतापूर्वक पौधा लिया—"हां, देव, यही वस्तु मेरे आदर्श को साकार करने वाली है।"

वास्तव में फूल ही ऐसा है जिसकी सौरभ शत्रु-मित्र को समान रूप से आनन्द देने वाली है। तलवार का पानी उतर जाता है, धन का दुरुपयोग हो जाता है, सुन्दरी की श्री ढल जाती है, पर फूल का सम्मान संसार में कभी कम नहीं होता। जो मानव फूल-सा सुरभित जीवन जीकर जगत को सौरभ दान करता है, वही मानव तन में, विश्व-मानव का रूप है।
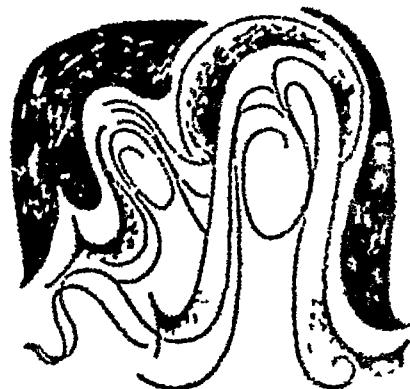
४८ | शील

महाभारत (शाति पर्व) मे बताया है, 'शील मनुष्य की समस्त सम्पदाओ का आधार है। धर्म, ज्ञान, श्री, कीर्ति आदि शील के बल पर ही टिकी हुई है।"

एक आख्यान मे बताया गया है, एक बार असुरराज प्रह्लाद के परम प्रताप को क्षीण करने के लिए देवराज ने देवगुरु बृहस्पति से उपाय पूछा। उपाय पूछकर इन्द्र विप्र वेश धारण कर असुरराज की सभा मे पहुँचे। इन्द्र के विनम्र व्यवहार से प्रसन्न हो प्रह्लाद ने वर मागने को कहा।

—"दैत्यराज। यदि आप मुझ पर प्रसन्न है तो अपना शील मुझे दे दीजिये।" विप्र वेशधारी इन्द्र ने वर मागा।

दैत्यराज ने उदारता पूर्वक तथास्तु कहा। इन्द्र स्वर्ग मे

लोट आये।

रात्रि के द्वितीय प्रहर में एक परम तेजस्वी आकृति प्रह्लाद के समक्ष उपस्थित हुई "महाराज ! मैं शील हूँ, आपने मुझे विप्र को दान कर दिया है अतः मै उसी के पास जा रहा हूँ।"

शील के जाने के बाद एक परम शाति युक्त पुरुष आकृति सामने आई। प्रह्लाद चकित होकर देख रहे थे, तभी आवाज आई "राजन् ! मै धर्म हू, जहा शील रहता है, वही मै निवास करता हूं, अत मुझे जाने की आज्ञा दीजिये।",

तदनन्तर सत्य, सुरुचि और शक्ति ने भी विदा मागी अन्त में एक अलौकिक शुभ्र काति युक्त नारी प्रकट हुई- "दैत्यराज ! मैं भी हूँ, जहा शील, धर्म एवं सत्य रहता है, वही रहती हूं।"

चकित प्रह्लाद हतप्रभ से देखते रह गये। "विप्र ने शील मांगकर तो मेरी सम्पदाएं हर ली।"

भगवान महावीर ने भी समस्त सद् गुणों का आधार शील को ही बताया है। अनेगेगुणा अहीणा भवंति एगम्मि –एक शील (ब्रह्मचर्य) में ही अनेक गुण अधिष्ठित रहते है।

४६

वीरता और साधुता

अकेली वीरता —क्रूरता का प्रतीक है,

अकेली साधुता—कायरता का प्रतीक है ।

जहा करुणा के साथ रक्षा की भावना है, दया के साथ परोपकार की भावना है, और परोपकार के साथ न्याय प्रदान करने की दृढता है—वहाँ वीरता के साथ साधुता का सगम होता है ।

जो साधु होकर भी कायर होता है, वह साधुता का अपमान करता है ।

जो वीर होकर निर्दय होता है, वह वीरता को लाछित करता है ।

हदीस का एक वचन है—"खुदा को वह भक्त पसद है, जो साधु हो, और सूरमा हो ।"

मौलाना हाली की एक रुबाई मुझे याद आ रही है-

मूसा ने यही कि अर्ज ऐ बारे खुदा,
मकबूल तेरा कौन है बंदों मे सिवा।
इरशाद हुआ, बन्दा हमारा वह है,
जो ले सके और न ले बदी का बदला।

—मूसा ने खुदा से पूछा— आपको कौन भक्त स्वीकार (पसद) है। उत्तर मिला— जो बुराई का बदला ले सकता है किन्तु नही ले, वही हमारा भक्त है।

जैन भाषा में तीर्थंकर को 'क्षमा-शूर' कहा है, क्योंकि वे अनन्त बलशाली होकर भी कभी किसी को कष्ट नही पहुँचाते। सचमुच में यही साधु की वीरता है।

५०
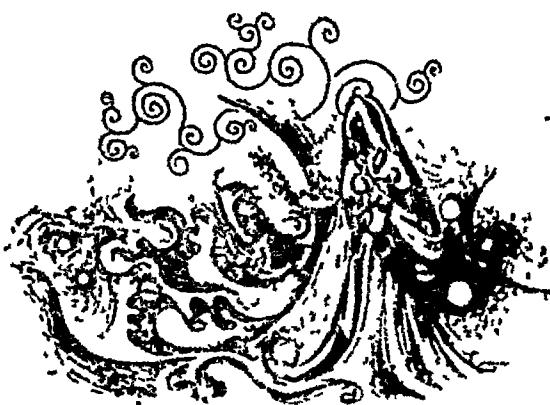
अन्तिम क्षण

अधिकाश धार्मिक मानते है-धर्म और ईश्वर इस जीवन के लिए नही, किंतु अगले जीवन को सुखी बनाने वाली शक्ति है, इसलिए वे जीवन के अंतिम समय को ही ईश्वर उपासना और धर्म आराधना का समय मानते है। यह बहुत बडी भ्राति है, इस सम्बन्ध में गाधीजी का सस्मरण मुझे याद आ रहा है।

एक व्यक्ति ने एक बार गाधीजी को पत्र लिखा—"मैने स्वप्न देखा है, आप अब इस ससार मे थोडे दिनो के ही मेहमान है। अत उत्तम यही होगा कि अन्य सभी कार्य छोडकर अपने अतिम कुछ दिन प्रभु भजन में बिताये।"

गाधीजी ने जबाब दिया-"आपने ठीक लिखा, पर हम अपने जीवन मे अतिम क्षण ही प्रभु को स्मरण करे और

समस्त जीवन वेफिक्र रहे–यह भावना ही गलत है। मृत्यु का क्या भरोसा ? वस्तुत: जीवन का हर क्षण अंतिम क्षण हो सकता है—अत: क्यो न हम सदैव प्रभु को स्मरण करते रहे।"
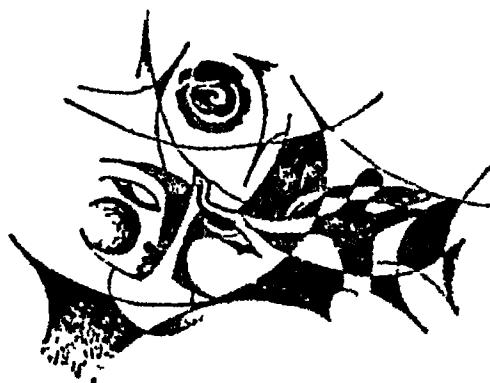
५१ | सुनार

विश्व के समस्त साहित्य में सुनार को सोने का सबसे अधिक रसिक, लोलुप अतएव स्वर्ण-तस्कर माना है। श्री लंका की एक लोक कथा है कि प्राचीन काल मे सुमेरु का शिखर सोने का था। एक दिन कुछ चूहे वहा पहुँच गये और उन्होने खुरचना शुरू कर दिया। शिखर टूट कर गिरने लगा तो महर्षि अगस्त्य जो वहाँ तपस्या कर रहे थे, उनकी तपस्या मे विघ्न उपस्थित होने लगा। ऋषि चूहो की हरकत पर क्रुद्ध हो उठे, और उन्हे शाप दिया। तुम सब धरती पर सुनार बनकर जन्म लोगे और जन्म भर सोना खुरचते रहोगे।"

कहते हे सुनार इसी कारण सोने के प्रति जन्म से ही अधिक आसक्त रहता है और सदा सोना चुराने की चिता मे रहता है।

कविवर क्षेमेन्द्र का एक श्लोक प्रसिद्ध है—

तगापि हेमकारा हरण कला ,
योगिनः पृथुध्यानाः ।
ये धाम्नि वहुल लक्ष्म्याः ,
शून्यत्वं दर्शयन्त्येव ।

—सुनार तो चोरी की कला मे माहिर होते है । उनका ध्यान सदा सोना चुराने की ओर लगा रहता है । उन्हे अगर सोने के महल मे रख दिया जाय तो कुछ ही दिनो मे वहां वीरान जमीन नजर आयेगी ।

गुजरात में एक कहावत प्रचलित है ,
सई चोरे कपडुं ने सोनी चोरे रती ,
हजाम बापड़ो शु चोरे ,
माथा मां कांई नथी ,

—दरजी कपड़े चुराता है और सुनार रत्तीभर सोना । किंतु वेचारा नाई चुराये भी तो क्या चुराये—सिर मे चुराने लायक कुछ है ही नही !

अंग्रेजी की एक प्रसिद्ध कहावत है—

ए हंड्रेड टेलर्स, ए हंड्रेड वीवर्स एण्ड ए हंड्रेड गोल्ड-स्मिथ मेक थ्री हड्रेड थीव्स ।

—सौ दर्जी सौ जुलाहे और सौ सुनार-तीन सौ चोरो के बराबर है।

राजस्थानी उक्ति में भी सुनार को ठगो में गिना है—

सौ सोनारा एक ठग।

सौ सुनार मिल कर एक ठग जितना होता है।

सुनार की आदत के सम्बन्ध में एक तमिल की कहावत है।

कट्टिट अलुकिर पोदु
वैयुम् तुलाबु किरदु

मृतक के घर शोक मनाने के लिए इष्ट-मित्र सगे सम्वधियो की भीड एकत्र है गले-मिलकर रो रहे है और साथ-साथ हाथ से एक दूसरे की जेबे भी टटोलते जाते है।

वास्तव मे यह सुनार जाति पर नही, किंतु उसकी सोने के प्रति तीव्र आसक्ति पर एक व्य ग्य है। जो भी स्वर्ण मे आसक्त होगा, वह इन्ही व्यग बाणो का शिकार हो सकता है।

५२

एक समय का ही मूल्य है

संसार में सबसे मूल्यवान वस्तु कौन सी है-जो चले जाने पर किसी भी मूल्य पर वापस नही लौटती, और उसीसे सब वस्तुओ का मूल्य आका जाता है ?

इस विस्तृत उत्तर का छोटा सा सार निकला-समय ! समय बीत गया तो करोडो की संपत्ति मिट्टी के मोल भी नही बिकती, और समय पर मिट्टी भी हीरों के मोल नही मिलती । यह है समय का महत्व !

पर समय का यह महत्व हमने कब समझा ? यदि समझा है तो फिर इतने बहुमूल्य समय को क्यो हम नष्ट होने देते हैं ? मीटिंग का सात बजे का समय देकर आठ बजे क्यों पहुंचते है ? क्या इसमे प्रतीक्षा करने वाले सैकडों व्यक्तियों के बहुमूल्य सैकडो घंटे नष्ट नही होते ?

स्व० ईश्वरचन्द्र विद्यासागर समय के इतने कडे पाबद थे कि जब वे १० बजे कालेज को जाते तो लोग उन्हें जाते देखकर अपनी घडियां मिला लेते कि अब ठीक दस बजे है।

नेपोलियन के सम्बन्ध में प्रसिद्ध है कि एकबार उसने प्रधान सेनापति को अपने यहा भोजन पर निमंत्रण दिया। सेनापति को पहुंचने में देर हो गई, अत जब वे पहुचे तो नेपोलियन अपना खाना लगभग समाप्त कर चुकाथा उठकर हाथ मुह धोने के पश्चात् नेपोलियन ने उनसे कहा— "भोजन का समय तो बीत गया, आइये अब हमें अपना काम शुरू करें ?"

अमेरिका के राष्ट्रपति जार्ज वाशिगटन भी समय के बडे पाबद थे। एकबार उनका सेक्रेटरी बिलम्ब से आया। वाशिगटन ने कारण पूछा तो क्षमा मॉगते हुए सेक्रेटरी ने बताया कि उसकी घडी लेट चलने लगी थी।

गभीर हो वाशिगटन तुरन्त बोले—"जनाब ! या तो आप अपनी घडी बदल लीजिये, या मुझे अपना सेक्रेटरी बदलना पडेगा।"

वास्तव में जो समय का मूल्य समझता है, समय अवश्य उसका मूल्याकन करता है। —●

५३ | राजनेता

चुनावों के दौरान एक प्रसिद्ध राजनेता ने कई प्रकार की परस्पर विरोधी भविष्यवाणिया की और लोगों को विश्वास दिलाया कि मेरे अनुमान सच्चे होंगे।

भाग्यवश उनकी एक भविष्यवाणी सच्ची निकल गई। वे अपने उस क्षेत्र मे गये और तालियों की गडगड़ाहट के बीच उन्होने कहा—"देखिए! मैंने जो कहा वह अक्षर-अक्षर सच निकला? है न कमाल!"

फिर एक दूसरे क्षेत्र में गये। वहां के लोगों ने उन्हे घेर लिया और कहा—"आपने जो बात कही, वह तो सरासर गलत निकली।"

राजनेता मुस्कराये—"ओह! आप लोग कैसे हैं?

मेरे कहने का कुछ अर्थ भी नही समझा ? जो मैने कहा वही तो हुआ ?"

मैं इस विरोधी भाषा को, जिसे साहित्य मे 'साध्य-भाषा' कहते है सुनकर चकित था, क्या राजनीतिज्ञ बनने का यही फार्मूला है ?"

५४ | हमारी घ्राणशक्ति
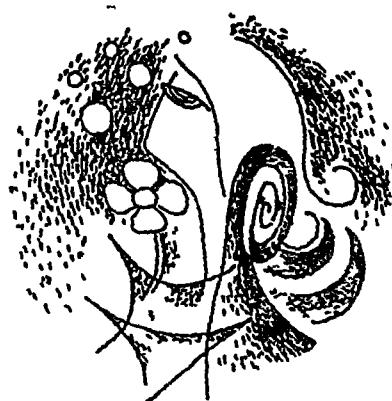
प्राय: हम एक वस्तु मे एक ही प्रकार की गंध का अनुभव करते है और कह देते है—इसमे अमुक गन्ध आ रही है। किंतु जैन दर्शन की सूक्ष्म मान्यता है—एक वस्तु मे एक साथ अनेक प्रकार के वर्ण, गन्ध, रस आदि रहते है। और उन्हे हम आसानी से ग्रहण कर सकते है।"

उपर्युक्त मान्यता की सम्पुष्टि आधुनिक विज्ञान की खोजो ने तो की है, पर साक्षात् व्यवहार मे भी ये सिद्ध हो चुकी है। ब्रिटेन मे एक व्यक्ति हुआ है-अर्नेस्ट क्रकर ! उसकी घ्राण शक्ति अत्यन्त तीव्र थी। तीव्र घ्राण शक्ति के कारण उसकी नाक का मूल्य लगाया गया था १० लाख डालर ! अर्थात् ५० लाख रुपये। बड़ी-बड़ी कम्पनिया और सरकारें उसे बुलाकर वस्तुओं के गन्ध की परीक्षा करवाती थी। साधारणत: वह एक प्रवीण होने

वाली गन्ध में चालीस-चालीस प्रकार की गन्धो को पकड कर उनका विश्लेषण कर देता था।

यह है हमारी घ्राण शक्ति और वस्तु की गन्धवत्ता की स्थिति।

५५ | चरित्र

किसी भी देश की शक्ति, वहां की सेना और समृद्धि में नही, बल्कि जनता के चरित्र में निहित होती है।

फ्रांस ने हालेंड पर आक्रमण किया था, पूरी शक्ति के साथ प्रयत्न करने पर भी वह युद्ध में विजय प्राप्त नही कर सका। पराजय मे झुंझलाकर वहा के सम्राट लुई चौदहवे ने अपने मन्त्री कालवर्ट से पूछा—"हम इतने संपन्न और एक महान् देश के निवासी है, पर उस जरा-से देश को भी नही हटा सके ?"

कालवर्ट ने नम्रता के साथ जवाब दिया—"महाराज ! किसी भी देश की महानता उसकी लम्बाई-चौड़ाई और धन-सम्पदा पर आश्रित नही होती, किन्तु यह तो वहां के नागरिकों के चरित्र पर निर्भर करती है।" —●

५६ | आज का कानून

एक बार किसी बाल-कल्याण केन्द्र के विषय में पढ रहा था। अनेक अपराधी बच्चो को मानस परिवर्तन के द्वारा जीवन की दिशा बदलकर उन्हे योग्य और सभ्य नागरिक बनाने के इन शुभ प्रयत्नो को पढकर मन में एक सात्विक प्रसन्नता दौड़ गई, और समाज की न्याय व्यवस्था एवं सुधार योजना पर मन आल्हादित हुआ।

और एक दिन सडको पर फटे चिथडो में लिपटे मारे-मारे फिरते बच्चो को जब मैंने देखा सुना, तो प्रसन्नता खेद मे बदल गई। जिनके पेट और पीठ मारे भूख के एक हो रही है, उन दीन, अनाथ एव असहाय बच्चों को कोई पूछता भी नही, कोई करुणावान एक पैसा दे जाय तो

""""मैं भी यही मानता था कि मन को अपने अनुशासन मे चलाना टेढी खीर है। किन्तु एक दिन जब मैंने जंगली हाथियो और विकराल क्रूर सिहो का प्रशिक्षण देखा तो मनुष्य के अध्यवसाय और आन्तरिक शक्ति पर मैं दग रह गया। पूर्ण स्वच्छन्दता मे पले हिसक सिह व मत्त गयद को भी जब मनुष्य अपने धैर्य, कौशल, एवं अन्तश्चेतना द्वारा स्वेच्छानुकूल चला सकता है तो उसका अपना मन कैसे उसका वशवर्ती नही हो सकता ? मेरे जीवन में उसी दिन से मन के प्रति यह चुनौती जगी और मैंने अपने मन को अपनी आज्ञानुसार चलाने का सकल्प कर लिया . .।" सर विश्वेश्वरैया का यह उत्तर आज के साधकों के लिए भी एक प्रेरणादीप बन सकता है।

५८ | लखपति भिखमंगे

पैसा ही मनुष्य की समृद्धि का कारण नही है, कुछ मनुष्य पैसा होकर भी भिखारी की तरह जीते है, पैसे के स्वामी बनकर नही, किन्तु गुलाम बनकर दर्द और अपमान भरी जिन्दगी का भार ढोते रहते है।

जब तक मन की दीनता नही मिटती, धन मनुष्य को दीनता-दरिद्रता से मुक्त नही कर सकता। प्रतिदिन अखबारो मे ऐसी अनेक घटनाए आती रहती है कि अमुक भिखमगे के मरने के बाद उसके पास लाखो रुपयो के सिक्के मिले। इतना सोना मिला ।

कुछ वर्ष पूर्व सुना था, लदन मे जहा ब्रिटेन की रानी रहती है, वहा एक भिखमगो का राजा भी रहता है। बहुत सस्ते के जमाने मे उसकी वार्षिक आय थी–१३,३७५

रुपए वार्षिक। वह भिखमंगी को एक व्यापार के रूप में चलाता है। उसके कई दफ्तर है। वह दिनभर करुणा भरी चिट्ठियां लोगो के पास भेजता रहता है, और दया के नाम पर उसका व्यापार फलता-फूलता रहता है।

एक लगड़े भिखमंगे के विषय में लिखा गया है, उसकी वार्षिक आय ६०० पौंड अर्थात ८०२५ रुपया थी। वह दिन भर भीख मागकर वापस टैक्सी में बैठकर अपने घर लौटता था।

काशी में अन्नपूर्णा के द्वार पर एक बार एक बुढिया मरी तो उसके बिस्तर मे अशरफियां सिली हुई मिलीं।

नीतिकारो ने कहा है–'मागन मे मरना भला' पर जब भिखमंगो की ये घटनाएं सुनते है तो लगता है वे जीते हुए भी मर रहे है, अपने पुरुषार्थ और भाग्य को बेचकर दुनिया की दया करुणा की डोर के सहारे ही जीने में उन्हे आनन्द आता है।

आज समाज मे सभ्य भिखमंगो की भी कमी नहीं है। मित्रता या परिचय के नाम पर उधार माग कर कभी न लौटाने वाले, बीमारी की कारुणिक झूठी तस्वीर दिखाकर, विपत्तियो की कल्पित कथाएँ सुनाकर घर-घर चंदा

मांगने वाले, और उसी के सहारे जीने वाले अनेक ऐसे सभ्य भिखारी समाज मे जी रहे है—जिन्हे देखकर मुझे करुणा भी आती है, और क्षोभ भी। ग्लानि भी होती है- कैसे है ये पुरुष होकर भी पुरुषार्थहीन !

—●
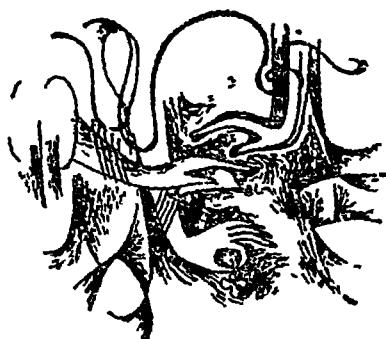
५६ | डिप्लोमेसी

आज की राजनीति एक भयंकर कूटनीति के रूप में बदल गई है। ऊपर से मानवता, नैतिकता और सह-अस्तित्व की पुकार और उसके भीतर नाच रही है-दानवता, अनैतिकता और एक दूसरे को निगलजाने की क्रूर लालसा इसीलिए तो आज के राजनेताओ की सद्भावना को मगर मच्छ के आँसू कहा जाता है।

प्रसिद्ध दार्शनिक लिङ् यू ताङ् ने आज की इस कुटिल डिप्लोमेसी पर व्यग्य कसते हुए लिखा है—

"मा खाना बटोरने के लिए बाहर गयी थी। कोटर में बच्चे चहक रहे थे। पापी गिद्ध, द्वार पर आकर बैठ गये। बच्चे बोले—मामा, आज बडे खुश नजर आ रहे हो?"

गिद्ध ने बच्चो की ओर लोलुपदृष्टि से देखते हुए

कहा—बच्चो, आज मैं तुम्हें खाकर अपनी आठ दिन की भूख को मिटाऊंगा।"

बच्चे घबरा गये। कांपते हुए बोले—"लेकिन मां तो तुम्हें अपना सबसे बड़ा हितैषी मानती है।"

सिंह मुस्कराया—यह तो मेरी वाणी का चातुर्य है। क्या तुम नहीं जानते, मनुष्य की भाषा में इसे डिप्लोमेसी कहते हैं। दुनिया की सभी बड़ी शक्तियां आजकल इसी कला की साधना रही है।

६०
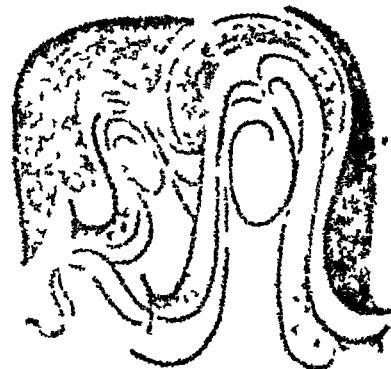
अपने जैसा

एक मनुष्य से किसी ने पूछा—सृष्टि में सबसे सुन्दर कौन है ?

मनुष्य ने गर्व के साथ शिर उठाया- 'मैं' ।

और सबसे महान कौन है ?

'मैं' । मनुष्य का उत्तर था ।

वास्तव में प्रत्येक मनुष्य ही क्या प्राणिमात्र में यह भावना है कि वही जगत का श्रेष्ठ और सुन्दर प्राणी है, संसार को उसी को आदर्श मानकर चलना चाहिए ।

एक अरबी कथा है एक बार एक पशुप्रेमी चित्रकार ने घोडे का सुन्दर चित्र बनाया । चित्र लेकर उसने अपने अरबी ऊंट से पूछा—"देखो, यह चित्र कैसा लगा ?"

ऊंट ने अपनी टेढी गर्दन हिलाकर कहा–"सुन्दर है, पर इसमे यदि मेरे जैसी कूबड और निकल जाती तो फिर क्या कहना ? सुन्दरता खिल उठती।"

चित्रकार ने अपने प्यारे गधे के सामने चित्र रखकर पूछा—कहो तुम्हे चित्र कैसा लगा ?

गधे ने अपने कान खडे करते हुए कहा "इतना बडा और सुन्दर जानवर ! और कान इतने छोटे ? जरा कान बडे होते तो मेरी तरह यह भी क्या ही खूब सूरत दीखता —?

चित्रकार ने अपना शिर थामा। ये तो सब अपने को सुन्दर समझ रहे है और समूची सृष्टि को अपने जैसा ही देखना चाहते है।

आज मानव की भी यही स्थिति है। वह सपूर्ण जगत को अपने आदर्शो का अनुयायी देखने का स्वप्न देख रहा है।

६१ | भोग बुद्धि

धन की तीन गतिया बताई गई है—

दान

भोग

और नाश !

प्रथम गति–श्रेष्ठ है, द्वितीय मध्यम और तृतीय अधम ! जो धन पाकर दान नही दे पाया और भोग भी नही पाया वह संसार का सबसे बडा मूर्ख है।

एक भिक्षु एक दिन अंगदेश की राजधानी कर्णावती के निकट से जा रहा था। उसने देखा–एक बिल्व-वृक्ष की छाया में कोई शव पडा है। भिक्षु ने कुछ किसानो की सहायता से उस शव को कर्णावती पहुचाया और नागरिको से पूछा–इसे पहचानते हो, यह किसका शव है ?

नागरिक शव को देखकर अवाक् रह गए। यह वहां के धनकुबेर का शव था जिसकी गगनचुम्बी अट्टालिका के सात प्रकोष्ठ मणि माणिक्यो से भरे थे। किन्तु वह इतना कृपण था कि अपनी भूख बुझाने के लिए, जगलो मे जाकर कंद मूल खाता फिरता था।

भिक्षु के आदेश से शव की संस्कार क्रिया की गई, उसकी संगमरमर की समाधि बनाई गई और उस पर ये शब्द अकित किये गये—"यह उस मनुष्य की समाधि है जिसने प्रचुर धन कमाया, उसकी जीवन भर रक्षा की पर, कभी उस का सुख नही भोगा।"

वास्तव में धन तो नदी के प्रवाह की भाति है, जिसका उपयोग किया जा सकता है, सग्रह नही।

—

६२ | बैल और गधा

प्रकृति का नियम है — जैसी आकृति होगी, वैसी ही प्रतिकृति सामने आयेगी। जो दूसरे की प्रशंसा करेगा, उसे स्वय ही सर्वत्र प्रशसा मिलेगी, और जो दूसरो की निन्दा करेगा उसे निंदा !

एक सत से किसी ने कहा—"वे (निंदक) आपकी ओर अंगुली उठा रहे है आप उनका कोई उत्तर नही देते।"

संत ने मुस्कराकर कहा—"उनका हाथ स्वयं ही तो उन्हे इसका उत्तर दे देता है।" वे मेरी ओर एक अंगुली उठाकर मुझे बुरा बताते है, किन्तु उनकी तीन अगुली स्वय उनकी ओर मुड़कर क्या उन्हे नहीं कहती कि उनसे तीन गुने बुरे तुम हो ? जरा अंगुली उठाकर देखिए, तो सही।"

सचमुच वेदों की यह उक्ति अक्षरश: सत्य है

शप्तारमेतु शपथ.— अथर्ववेद २।७।५

गाली देने वाले के पास गाली वापस लौट आती है।

एक बार किसी राजा के दरवार मे संगीत का आयोजन हुआ। उसमे कई प्रसिद्ध गायक और वादक आये।

राजा ने एक वादक को महल मे आमन्त्रित किया और किसी गायक के बारे मे पूछा। वादक बोला—"महाराज! आप किसकी वात पूछते है, वह तो पूरा गधा है।"

कुछ समय वाद उस गायक को बुलाया गया और उसे भी उस वादक के विषय मे पूछा। गायक नाक भोह बिगाड कर बोला—"उसे तो कुछ भी आता-जाता नही, निरा बैल है वह तो।"

दूसरे दिन राजमहल मे भोज का आयोजन हुआ। थाले लगी थी। रेशमी कपडे से ढकी दो थालियाँ उनके सामने आयी। कपडा हटाकर देखा तो एक भूसे की थाली और दूसरी घास की। गायक-वादक एक दूसरे को देख रहे थे। तभी राजा ने कहा—'क्यो, आपके द्वारा प्रदत्त परिचय के अनुकूल ही तो है यह भोजन।"

६३

दासों का दास

लोभ और तृष्णा—मन की दुष्ट वृत्तिया है। इन वृत्तियो पर जो अपना नियंत्रण रख सकता है, वह समूचे ससार का नियता है और जो इनका दास है उसका विजेता बनने का हर्ष केवल दम्भ है, आत्म-छलना है।

एक बार सिकन्दर महान् अपनी सेना के साथ ईरान के राजमार्ग से गुजर रहा था। विजय दर्प मे उसकी आँखे आकाश की ओर लगी थी। भयभीत दीन प्रजा झुक-झुक कर सम्राट का अभिवादन कर रही थी। तभी सामने से एक फकीरो की टोली गुजरी। वे सन्त अपनी मस्ती मे झूमते हुए चल रहे थे, किसी ने सिकन्दर की ओर आँख उठाकर भी नही देखा। सिकन्दर का अभिमान जैसे सातवे आसमान से भूमि पर आ पड़ा हो। उसके क्रोधावेश का ठिकाना न रहा। क्रोध से कांपते हुए उसने

संत-फकीरों को रुकवाया—"तुम लोगो की इतनी जुर्रत ! क्या तुम्हे नही मालूम, मै समूचे जहान का बादशाह सिकन्दर महान् हू।"

टोली के एक वृद्ध तेजस्वी फकीर ने मीठी मुस्कान के साथ कहा—'राजन् ! तू किस भ्रम मे भटक रहा है ! तू नही जानता, तेरे ये राजसी ठाट किन मूर्खों को चक्कर मे लेने के लिए है। मैं तो इनको एक तिनके से भी कम महत्व देता हू—

दो बदारा मन की हर्स ओ आजद
वर तो हमारोज सर फराजद।

—जिन लोभ और तृष्णा के वशीभूत हुआ तू दिन-रात उनकी चाकरी बजा रहा है, वे दोनो तो मेरे पैरो पर लौटने वाले परम आज्ञाकारी सेवक है। अत तू तो मेरे दासो का भी दास है।"

सिकन्दर का गर्व चूर हो गया। सचमुच वह जिस तृष्णा के इशारो पर नाच रहा था, वह तृष्णा तो सन्तो की पद धूलि चाटती है।

—

६४ | ज्ञान की कुंजी

एक आचार्य ने कहा है—

" तपोमूला सर्व सिद्धयः "

समस्त सिद्धियो का मूल तप है ।

डाक्टर राधाकृष्णन् ने कहा है—तप ही ज्ञान की कुजी है । तप मे ही ज्ञान के भीतर शक्ति का उद्रेक होता है, और तप से ही वह शक्ति श्रेयोगामी होकर अमृत की सृष्टि करती है ।"

भगवान महावीर ने ज्ञान (केवल ज्ञान) प्राप्ति के लिए साढे बारह वर्ष तक कठोर तप-साधना की । इस तप साधना द्वारा ही हृदय के कल्मष धुल-धुल कर बह गये, और समस्त आवरण हट गए । अन्तर शक्तियां स्फुटित हुई और अनन्त ज्ञानालोक प्रकट हो गया ।

उपनिषद् में भारद्वाज मुनि का एक प्रसंग है। उन्होंने जीवन भर तपस्या की। दूसरा जन्म मिला, उसे भी ज्ञान की पिपासा लिए तपस्या द्वारा क्षीण कर डाला। तीसरा जन्म मिला और पुन तप की वही सकल्प—परम्परा। उनके इस उग्र तप को देख इन्द्र को आश्चर्य हुआ और भय भी। प्रकट होकर विनम्रता पूर्वक इन्द्र ने पूछा—"मुनिश्रेष्ठ! यह कठोर तपस्या किसलिए कर रहे है?"

ध्यानावस्थित भारद्वाज ने कहा—"यह तपस्या ज्ञानार्जन के लिए है देव!"

परम तुष्टि के साथ देवराज ने पुनः पूछा—"यदि आपको एक जन्म और मिले तो, उसमे क्या करेंगे?"

सहज भाव से भारद्वाज बोले—"वह जन्म भी ज्ञानार्जन के लिए तपस्या मे विताऊँगा।"

जैन दर्शन ने तो इसीलिए ज्ञान-पिपासा और ज्ञान-साधना को भी तपस्या मान लिया है। सचमुच तप ही अनन्त ज्ञान सिद्धि की कुजी है।

—

६५ | कौवा और कुत्ता

हमारे जीवन मे कौवा और कुत्ता इन दो प्राणियों का अत्यन्त निकटतम परिचय है—हम प्राय: ही उन्हे देखते है, उनकी आदतो को समझते हैं, पर शायद विचार नही करते ।

एक दिन सोचते-सोचते मैं कुछ गहराई में उतर गया । तो कौवे के सम्बन्ध मे प्रसिद्ध एक संस्कृत श्लोक मुझे याद आ गया—

काकः स्वभाव चपल: परिशुद्धवृत्ति
लब्ध्वा बलि स्वजन माह्वयते परांश्च ।
चर्मास्थि मांसवति हस्ति कलेवरेपि
श्वाद्वेष्टि हन्ति च परान कृपणस्वभाव. ।

कौवा स्वभाव से चालाक जरूर होता है, पर उसमे

हृदय बडा शुद्ध रहता है, जब उसे कही से कुछ खाने को मिल जाता है, तो वह अकेला नही खाता बल्कि अपने जाति बन्धुओ को बुलाकर उसमे शामिल करता है।

किंतु कुत्ता—इसके विपरीत ऐसे कृपण स्वभाव का होता है कि यदि खाने के लिए उसे हाथी का पूरा शरीर भी मिल जाए तो भी वह अपने भाई-बन्धुओ को नही बुलाता, अपितु छुपकर अकेला ही खाना चाहता है, यदि कही से भूले भटके आ भी जाते है तो वह उनसे लडता है और तत्क्षण ही जान से मरने-मारने को तैयार हो जाता है।

कौवे की उदारता के सम्बन्ध मे द्रविड साहित्य मे एक सूक्ति प्रसिद्ध है—

कावकैं करवा करै दुण्णु माक्कमुम्
अन्ननी रावर्के उल्।

—तिरुक कुरुल

कोवे को खाने की वस्तु मिलती है, तो वह उसे छिपाता नही, किन्तु अपने साथियो को चिल्ला-चिल्लाकर बुला लेता है और साथ मिलकर खाता है।

कोवे के इसी 'सह-भोगी' स्वभाव के कारण आधुनिक साहित्यकार उसे पक्का 'डेमोक्रेट'—समाजवादी भी कहते

है। कौआ समाजवाद का प्रथम शिक्षक हैं।

आज का मानव जो कि कुत्ते की तरह अकेला ही खाना और बन्धुओ से विद्रोह करने का आदी हो गया है, क्या कौवे की इस 'उदार वृत्ति' से कुछ नही सीखेगा। कौवे को निकृष्ट प्राणी कहने वाला स्वार्थी मानव स्वयं क्या उससे अधिक निकृष्ट नही बन रहा है?

●-
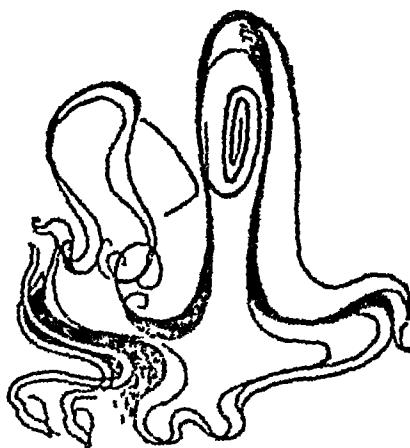
६६

आलोचना और निर्माण

आलोचना करना सरल है, किंतु कुछ नया निर्माण करना कठिन, बहुत कठिन है। संसार के हजारो-लाखो वचन वीरो मे भी कोई एक कर्मवीर पैदा हो या न हो। चूँकि आलोचना मे सिर्फ मुह की कसरत होती है, कर्म करने मे, निर्माण मे पसीना और रक्त बहाना पडता है।

रवीन्द्रनाथ ठाकुर की एक सुन्दर रूपक उक्ति है— एक दिन एक बर्र मधूकर से ऐंठ कर बोली—"क्या इतने से तुच्छ क्षुद्र मधुकोप पर ही तुम इतना अभिमान करके इतरा रहे हो ?"

नम्रता पूर्वक गुंजारव करते हुए मधुकर बोला—"तुम आ जाओ भाई! इससे छोटा ही एक मधुकोष बनाकर बतादो, जरा मैं भी देखलूं।"

बोलता कहिल, एजे क्षुद्र मउ चाक,
एरि तरे मधुकर एत करे जोक।
मधुकर कहे तारे तुमि ऐलो भाई,
आरो क्षुद्र मउचाक रचो देखे जाई।

सचमुच जिसमें निर्माण की शक्ति नही होती, वही दूसरों की आलोचना कर, उन्हे क्षुद्र बताकर अपनी दुर्बलता को छिपाना चाहता है। निन्दा और आलोचना अकर्मण्यता को छुपाने की एक आत्म-वंचक चादर है।
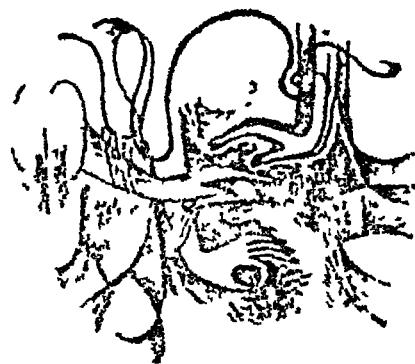
६७

नीति का प्रतीक राजा

राजा राष्ट्र के आदर्शो का प्रतीक होता है, यदि राजा स्वय नीति युक्त सदाचारी होगा तो प्रजा में भी स्वत उन गुणो का उत्कर्ष होता रहेगा। राजा यदि सुई की नौक जितनी भी भूल करेगा, अन्याय करेगा तो प्रजा के जीवन मे वे ही बडे-बडे गह्वर बन जायेगे।

ऋग्वेद मे कहा है—

ध्रुवं विश्वमिदं जगद्-ध्रुवोराजा विशामयम्

—१०।१७३।४

जैसे आकाश, पृथ्वी, पर्वत आदि स्थिर है, वैसे ही प्रजा की पालना करने वाला राजा अपने आदर्शो पर स्थिर रहे। इसी सत्य की सूचना करते हुए गोपथ ब्राह्मण मे कहा है—

यजमानऽधः शिरसि पतिते
स देशोऽधः शिरा पतति —२।२।१५

यजमान (नेता) के अधोमुंह गिरने पर देश भी औंधे मुह गिर जाता है।

शेखसादी ने राजा के चरित्र को आदर्श बनाने वाली एक घटना लिखी है—

ईरान के प्रसिद्ध न्यायी बादशाह नौशेरवाँ एक दिन जगल मे शिकार खेलने गये। वहाँ खाना बनाते समय रसोइये ने बताया कि नमक नही है। बादशाह ने कहा—"पास के गाँव से जाकर ले आओ। मगर बिना कीमत दिये मत लाना नही तो सारा गॉव उजाड हो जायगा।"

रसोइये ने आश्चर्यपूर्वक पूछा—जहाँपनाह; एक चुटकी भर नमक लाने से सारा गाँव उजाड कैसे हो सकता है?

नौशेरवॉ ने उत्तर दिया—"अगर बादशाह रिआया के घर मे चुटकी भर नमक मुफ्त मे ले ले तो दूसरे दिन राजकर्मचारी गॉव का गाँव चाट जायेंगे।"

सचमुच राजा के लिए इतना ऊँचा आदर्श होना चाहिए। प्रजा मे उसके गुण-दोषो का ही प्रतिबिम्ब पडता है। ●

६८ | कुत्सित फूल

कुत्सित फूल पर भ्रमर नही बैठता, गन्दी तलैया पर हस पानी नही पीता–तो फिर निन्दा अपवाद के कुत्सित गड्ढो पर हमारा मन क्यो ध्यान देने लगता है ?

साधक, तपस्वी, साहित्यकार और मनीषी–इन सबकी एक ही परम्परा है, वे प्रशसा की कामना नही करते और निन्दा का तिरस्कार नही करते। निन्दा और प्रशसा उनकी साधना को कभी भग नही कर सकती।

जर्मन के विख्यात कवि गेटे की जब पहली पुस्तक प्रकाशित हुई तो आलोचको ने उसकी धज्जी-धज्जी उडा दी। गेटे इन सब आलोचनाओ को पढ-सुनकर भी चुप रहे। उनके मित्रो ने उनसे कहा—"आप कहे तो हमलोग आपकी ओर से इन आलोचको को करारा उत्तर दे।"

गेटे ने हंस कर कहा—उत्तर देने से पहले आप एक कविता सुन लीजिये। गेटे ने एक गीत सुनाया, जिसका सारांश था—"जब निन्दा करने वालो की जिह्वा आपको पीडा देने लगे, उस वक्त आप उस पीडा को ही सान्त्वना मानिये। याद रखिये-कुत्सित फूल पर भ्रमर कभी भी नही बैठते।"

मित्र मण्डली ने गेटे की उदार सहृदयता देख कर मौन रहकर आलोचना सुनने का ही निर्णय किया। —●

६६ | भाषा की उच्चता

मुख मनुष्य का सबसे बडा रत्नागार ही नही, रत्नाकर भी है। यहाँ रत्न पैदा भी किये जाते है और सुरक्षित भी रखे जाते है वे रत्न है—सुवचन ! पर, खेद है मनुष्य स्वय रत्नो का निर्माता होते हुए भी उनके उपयोग मे वह सबसे अधिक कंजूसी करता है।

यह रत्नागार ऐसा है कि इसका जितना उपयोग किया जाय उतना ही अधिक समृद्ध होता है। फिर इसमे दरिद्रता क्यो दिखाई जाय? एक नीतिज्ञ मनीषी ने इसीलिए तो कहा है—वचने का दरिद्रता? फिर वचन मे (जबकि उसके खर्च से मनुष्य समृद्धिशाली बन सकता है) कंजूसी और दरिद्रता क्यो?

बहुत से देशो और प्रदेशो मे शिष्टाचार के रूप में बहुत ही मधुर और उच्चकोटि की भाषा का प्रयोग होता

है। राजस्थान मे जोधपुर और उत्तर प्रदेश में लखनऊ की भाषा की शालीनता और शिष्टाचार का माधुर्य सारे भारत में प्रसिद्ध है। पिछले दिनो डा. पट्टाभि सीता-रमैय्या की एक पुस्तक "फैदर्स एन्ड स्टोन्स' मे चीन के शिष्टाचार का एक नमूना पढने को मिला। चीन में कोई अतिथि किसी के घर जायेगा तो मेजबान कहेगा—धन्य भाग्य, आज मेरा घर पवित्र हो गया।" मेहमान इसका उत्तर देगा—'महाशय, मेरे तुच्छ पैरों की क्षमता ही क्या है कि वे आपके महल की ड्योढी के स्पर्श योग्य हो सके।' इस पर मेजबान कहेगा—"महाशय, क्षमा कीजिये, यदि मेरे घर की ड्योढी हीरे-पन्ने की होती तब भी वह आपके चरणो के अयोग्य ही रहती।"

वास्तव मे ऊँची और शिष्ट भाषा मनुष्य के उच्च-सांस्कृतिक इतिहास की द्योतक है। इसलिए वेद और आगम 'मधुमती वाक्' का उपदेश करते आये है। अथर्ववेद में एक जगह कहा है "मधुमान् मधुमत्तर."—मधुमय पदार्थो से भी अधिक मधुर भाषा बोल।

७०

फूल और फल

मनुष्य देवताओ को प्रसन्न करने के लिए नाना प्रकार के उपक्रम, आराधना एव उपासना करता है, मंदिर-मदिर मे हर प्रस्तर मूर्ति के सामने देवताओ की प्रसन्नता का वरदान मागने भटकता है, पर उसे यह पता नही, वह देवता तो उसी के भीतर निवास करता है। अथर्ववेद का एक सूक्त है—

देवाः पुरुषमाविशन् —अथर्व ११।८।१३

सभी देव पुरुष मे निवास करते है। कस्तूरी की खोज मे भटकने वाले मृग की नाभि मे ही कस्तूरी छिपी है, यह उसे कहा पता है ? बीज के भीतर ही विराट वृक्ष की सत्ता है, फूल के हृदय मे ही फल का जन्म हो रहा है, पर इस सत्य का ज्ञान कहा है उसे ?

विश्व कवि रवीन्द्रनाथ की एक रहस्यवादी कविता मुझे याद आ रही है—

फूल कहे फुकरिया, फल ओ रे फल !
कत दूरे रयेछिल बल मोरे बल।
फल कहे महाशय ! केन हाका हाँको—
तोमारि अन्तरे आमि निरंतर थाकि।

—फूल चिल्लाकर कहता है "फल, अरे फल ! कितनी दूरी पर है तू, कम से कम मुझे जरा बता तो सही।" फल कहता है—"महाशय, मेरे लिए यह व्यर्थ की चीख पुकार क्यो कर रहे हो ? मैं तो निरन्तर तुम्हारे हृदय मे ही रहता हू।"

७१

सुख की परिभाषा

जैन आचार्यों से पूछा गया—सुख की परिभाषा क्या है? आचार्यों ने उत्तर दिया—'**अनुकूलवेदनीय सुखम्**'—मन की अनुकूल स्थिति का नाम सुख है।

महाभारत मे एक प्रसंग पर महर्षि व्यास जी ने सुख की परिभाषा देते हुए लिखा है—

प्राप्तं प्राप्त मुवासीत हृदये नापराजित' –अनुकूल या प्रतिकूल जो भी स्थिति हो, उसमे अपराजित हृदय से प्राप्त स्थिति मे सतुष्ट रहना यही वास्तव मे सुख है।

बुद्ध ने कहा है—कोट्याधिपति धन कुबेर को भी वह सुख नही मिल सकता, जो एक निस्पृह पुरुष को प्राप्त हो सकता है।"

सुख वस्तु मे नहीं, वस्तु के प्रति हृदय की सतुष्टि मे है।

यूनान के प्रसिद्ध दार्शनिक मेलिडियस ने अपने शिष्यो से सुख की परिभाषा पूछी, तो बहुत तर्क वितर्क के बाद उन्होने कहा—"जब जिस वस्तु की इच्छा की जाय, वह उसी समय हमे प्राप्त हो जाय—इसी स्थिति को सुख कहते है।"

मेलिडियस ने इसमे एक सशोधन जोडते हुए कहा—"जो कुछ हमें प्राप्त है, उससे ज्यादा नहीं चाहना, यह सुख है।"

अर्थात मन की सतुष्टि ही सुख है।
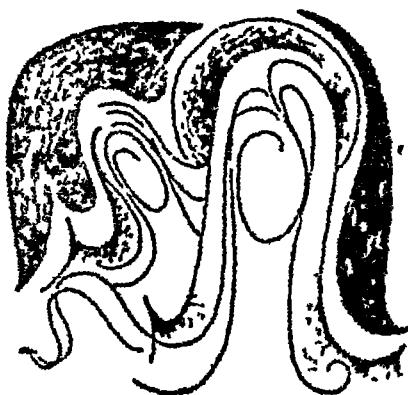
७२ | कल की चिंता

यदि आज आपके जीवन का आकाश स्वच्छ एव निरभ्र है, उसमे सुख-चैन का चाद विहस रहा है, निश्चिन्तता की चादनी छिटकी हुई है--तो बस, इसी का आनन्द लीजिए, कल की दुश्चिताओ, भय एव आशकाओ के काले वादलो से इस चाद को, इस शुभ्र-शीतल चादनी को मलिन मत होने दीजिए।

महाराज विक्रम के जीवन का एक प्रसंग सुना है। वे कवियो, विद्वानो एव याचको को मुक्त हाथ से दान देते हुए राजकोष को खाली कर रहे थे। मंत्री को बडी चिता हुई। उसने रात्रि में महाराज के शयन कक्ष के बाहर एक श्लोक लिखा—

आपदर्थ धन रक्षेत्--

आपत्तिकाल के लिए धन संग्रह करके रखना चाहिए। राजा ने प्रात. श्लोक का एक चरण पढा तो उसका आत्म-विश्वास मंत्री की चिंताकुलता पर हंस पड़ा। राजा ने उसी के नीचे खडिया से लिख दिया--

—श्रीमतामापदः कुतः ?

भाग्यशालियों को आपत्ति है ही कहाँ ?

मन्त्री ने दूसरे दिन राजा के उत्तर के नीचे ही लिख दिया—

सा चेद् यदि दुर्भाग्यात्

दुर्भाग्य से कभी वह (विपत्ति) आ गई तो ?

अचल आत्म-विश्वासी राजा विक्रम ने उसी के नीचे उत्तर लिख दिया—

संचितार्थो विनश्यति

यदि दुर्भाग्य से विपत्ति आ गई तो संग्रह किया हुआ धन भी नही बच पायेगा, वह भी नष्ट हो जायेगा।

हा तो, फिर उस दुर्भाग्य की कल्पना से हम आज ही क्यो विचलित होते है, 'आज' के सौभाग्य को 'कल' के

दुर्भाग्य से ढकना तो निरी मूर्खता है।

याद रखिए, जिन कालो घटाओ से आपको वज्रपात होने की आशका है, वे खेतो मे बरस कर धान्य की सुषमा भी विखेरती है। भय प्रतीत होने वाला 'कल' अभय का वरदान भी बन सकता है। अत कल की चिता से आज चितित मत होइए।

—

७३ | नियमितता

मै आज एक सज्जन के आने की प्रतीक्षा में दो घण्टे तक इन्तजार करता रहा। साय ६ वजे आने का निश्चय हुआ था, पर रात के आठ वज चुके थे, आकाश में तारे चमकने लगे थे, रात्रि कुछ शांत भी हो रही थी पर वह सज्जन अभी तक नही आये। करीव साढे आठ वजे वे आये। मैं एक टक नील गगन में छितरे असंख्य ग्रह-नक्षत्रो की गति पर सोचता-सोचता उसी ओर देख रहा था।

प्रतीक्षित सज्जन जैसे ही आये, वोले—"महाराज! आकाश में क्या देख रहे है?"

मेरे मुह से सहज रूप से निकल गया—"सोच रहा हूँ एक तो ये ग्रह-नक्षत्र, तारे चांद और सूरज है जो प्रति-

दिन लाखों-करोडो मील का प्रवास सम्पन्न करते हुए भी अपनी गति मे नियमित है, कभी क्षण भर का भी विलम्ब नही करते, और एक हम है कि दस-बीस गज की दूरी पर रहते हुए भी शाम को छह बजे मिलने का वचन देकर आठ या नौ बजे पहुँचते है, या कभी नही भी पहुचते।"

मैने बात पूरी कर देखा, तो सज्जन मन ही मन अपनी अनियमितता पर पश्चात्ताप-सा कर रहे थे।

७४ | सेवा

गुरु जी का एक शिष्य था। शास्त्रो का अभ्यासी और उपदेश कुशल! जब भी कही उपदेश करता, भीड जमा हो जाती, वाह-वाह की आवाजो से आकाश गूँज जाता। एक वार गुरु ने उसे कहा—"वत्स! शास्त्रो का इतना अभ्यास करके भी तुमने धर्म का रहस्य नही समझा?"

शिष्य गुरु जी की वात पर जरा खिन्न हो गया और एकात में जाकर शास्त्रो का पुनः अवलोकन करने लगा। कुछ समय वाद गुरुजी ने एक भक्त को भेज कर शिष्य को वुलाया। शिष्य ने कहा—"मैं अभी शास्त्र पढ रहा हूं अध्ययन पूरा करके आऊंगा।" पुन: वुलावा भेजा। शिष्य क्रोध में कुछ उतावला होकर उठा, आया और तेजी से बोला—

"क्या बात है, गुरुजी !

गुरु—तुझे पहली बार बुलाया तब क्यो नही आया ?"
"मैं शास्त्र का पारायण कर रहा था, धर्म का रहस्य खोजना जो है"—शिष्य ने कुछ गर्वपूर्वक गुरु जी की ओर देखा ।

मधुर और विनम्र स्वर मे गुरु जी बोले—यही रहस्य समझाने के लिए तो मैंने तुम्हे बुलाया था । एक दुखी और गरीब आदमी अभी मेरे पास आया था । उसकी सेवा करनी थी । तुम जानते हो, धर्म का रहस्य शास्त्रो मे नही मिलता, कर्म मे मिलता है । सेवा शास्त्र और प्रार्थना से कही ऊंची है । इसी को समझना धर्म को समझना है ।"

—●
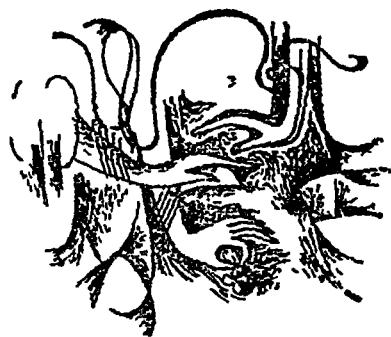
७५ | प्रशंसा सुनकर....

निंदा एक कड़वा जहर है, और प्रशंसा मीठा। निंदा के जहर को प्रसन्नतापूर्वक हजम करने वाले भी प्रशंसा के मीठे जहर को हजम नहीं कर सकते। थोड़ी सी प्रशंसा सुनी कि अपना संतुलन खो बैठे, सातवें आसमान पर चढकर अपने को कोई सितारा समझ बैठते हैं। अपना मानसिक संतुलन खो देते है, और फूल कर कुप्पा बन जाते है।

भगवान महावीर ने इसलिए प्रशंसा और कीर्ति को 'दलदल' कहा है—महयं पलिगोव जाणिया—इसे बहुत बड़ा दलदल समझो। चाटुकार इस दलदल को फैलाते रहते है और प्रशंसा के भूखे लोग फंस जाते हैं—इसमें। ऐसे बहुत कम विवेकी मिलेंगे जो अपनी प्रशंसा और चाटुका-

रिता सुन कर भी सभल कर रहे, उसके चक्कर में न आये।

एक बार प्रसिद्ध धनपति राकफेलर के पास एक व्यक्ति आया। नमस्कार करके उसने कहा—पूरे बीस मील पैदल चलकर आपके दर्शन किए है। रास्ते मे जहा भी रुका, बस मुह-मुह पर आपही की प्रशसा सुनी। सभी लोग एक ही वात कह रहे थे—आप जैसा उदार दानी पूरे अमरीका में नही है। आप जैसे दानवीरो से हमारा देश अमरीका भी धन्य हो गया—"और इस प्रस्तावना के बाद उसने अपने परिवार की कठिनाई बताते हुए सहयोग की प्रार्थना की।

राकफेलर ने पूछा—"आप जिस रास्ते से आये उसी रास्त से वापस जायेंगे न ? क्या मेरा एक काम करेंगे ?" आगतुक उत्साहपूर्वक बोला–"जरूर! आपकी सेवा करके मैं धन्य हो जाऊ गा कहिए क्या सेवा है मेरे लायक ?"

राकफेलर बोले—"बस, लोगो को इतना कहते जाइए, कि मेरे बारे मे जो बाते आपने फैलाई है, वे गलत है। राकफेलर कभी अपनी तारीफ सुनकर किसी को एक कौडी नही देता।"

७६ | महानता किसमें ?

मनुष्य अपने को सृष्टि का सबसे महान प्राणी मानता है। समूची पृथ्वी पर २॥ से ३ अरब की अल्प-संख्या वाला यह प्राणी समूची पृथ्वी का स्वामी होने का अहंकार कर रहा है—क्या यह उचित है ?

यह पृथ्वी का स्वामी होने का दर्प रखने वाला प्राणी प्रकृति के समक्ष कितना नगण्य, निर्बल और निरीह है कि, जरासा भू-कंप, तूफान, बाढ की लपेट अथवा अकाल की क्रूर छाया मे हजारों-लाखों की संख्या में इस प्रकार असहाय होकर मर जाता है, जैसे पतझड में पेड की पत्तियाँ।

जैन दर्शन की दृष्टि से तो एक जल की बूंद मे जितने जीव है, उतने मानव समूची सृष्टि पर भी नहीं है।

विज्ञान भी इस सत्य को स्वीकार कर रहा है, आधुनिक जीव विज्ञान वेत्ताओ के अनुसार पृथ्वी पर सबसे अधिक सख्या महासागरो एव झीलो आदि मे वसने वाले जल-जतुओ की है।

दूसरा स्थान है खुर्दबीन से देखे जाने वाले कीटाणुओ का। तीसरा स्थान कीडे-मकोडो का, चौथा मछलियो का, पाँचवाँ नभचरो का। नभचरो की तुलना मे मानव जाति की सख्या एक लाख पीछे १ के अनुपात मे ठहरेगी।

वैज्ञानिको का कहना है यदि आज की समग्र मानव जाति को एकत्र किया जाय तो उसके लिए आधा मील लम्बा, आधा मील चौडा और आधा मील ऊँचा स्थान काफी होगा।

और शक्ति की प्रतिस्पर्धा में भी मानव कितना तुच्छ है—जल दैत्य, अष्टापद, सिंह, हाथी, गैडा, घोडा—क्या मानव इनके साथ बल मे कभी तुलना कर सकता है ?

फिर मानव की महत्ता किसमे है ? शरीर बल मे नही, सख्या बल मे नही, रूप और गतिशीलता मे भी नही, महत्ता है—सिर्फ बुद्धि, हृदय और चेतना के ऊर्ध्व-

मुखी विकास में। यदि मानव होकर उसकी बुद्धि का ऊर्ध्वमुखी विकास नही हुआ है, हृदय विराट नही बना है, तो वह सूरदास के शब्दों में—भजन बिन कूकर शूकर जैसौ—बल्कि कूकर-शूकर से भी अधिक निम्नस्तर का है। पृथ्वी का सबसे महान प्राणी आध्यात्म शून्य होने पर सबसे निकृष्ट भी हो सकता है?

●–
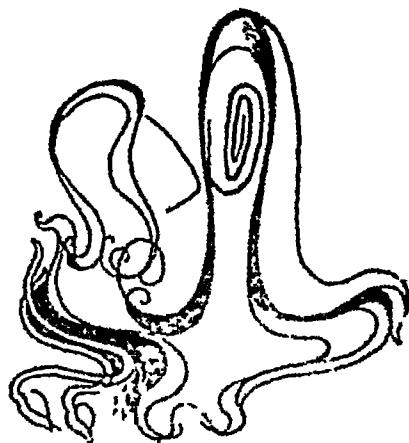
७७ | शेर की मूँछ का बाल

एक कहावत प्रसिद्ध है—"फूल वाले को फूल मिलता है और काँटे वाले को काँटा !" किसी का बुरा करने वाला अपना भला कभी नही कर सकता। कुआँ खोदने वाला–हमेशा नीचे ही जाता है, और जहर इकट्ठा करने वाला स्वय भी कभी जहर का प्याला पीकर अपनी मौत बुला लेता है।

इतिहास मे अलिखित किन्तु इतिहास की तरह मान्य एक कथा है—दिल्ली के अन्तिम मुगल बादशाह बहादुर शाह 'जफर' की। बादशाह को उनके पुत्र मिर्जा ने एक शानदार भोज दिया। महफिल राग-रग मे झूम रही थी, तभी मिर्जा ने एक बढिया सुगन्धित पान के बीडे मे शेर की मूछ का बाल रखकर भेट किया। कुछ समय बाद ही

बादशाह की हालत खराब होने लगी। हकीमों ने औष-धियाँ खिलाकर कै करवायी। कै के साथ खून के लोथड़े निकले और उसी के साथ वह बाल का टुकड़ा भी निकल आया। बाल ने सारा रहस्य खोलकर रख दिया। बाद-शाह ने दुख के साथ सारा रहस्य अपने मन में ही रखा।

कुछ दिन बाद बहादुर शाह की तबियत अच्छी हुई। फिर एक भोज का आयोजन हुआ। बादशाह ने एक जहर का प्याला तैयार कराकर रखा। राजकुमार भी भोज में निमन्त्रित हुआ। सभा के बीच बादशाह ने विषाक्त शर्बत का प्याला हाथ में लेकर राजकुमार से पुकारा—'बेटा! कुदरत का नियम है, जो देता है उसे मिलता भी है, तू ने मुझे शेर की मूंछ का बाल खिलाया तो बदले में मुझे भी कुछ तुम्हें देना चाहिए! लो, यह प्याला मेरे सामने पी जाओ।''

विवश राजकुमार बादशाह की आज्ञा का उल्लंघन कैसे कर सकता था। बाप के हाथ से लेकर बेटे ने चुप-चाप जहर का प्याला पीते हुए कहा—''ठीक है, जैसा दिया, वैसा मिल गया।'' और कुछ ही क्षण बाद मिर्जा वहीं लुढक कर गिर पड़ा......।

७८ | सद्व्यवहार का मूल्य

सद्व्यवहार एक दैवी सम्पत्ति है। कुछ नीतिकारो ने तो उसे 'कल्पवृक्ष' भी कहा है। आध्यात्मिक भाषा मे सद्व्यवहार को—सद्भाव एवं करुणा भी कहा जा सकता है। भगवान महावीर ने कहा है—

समाहिकारए णं तमेव समाहिं पडिलब्भइ

—भगवती सूत्र ७।१

दूसरो को समाधि (सुख) पहुँचाने वाला भी सुख एव समाधि पाता है।

किसी के प्रति किया गया हमारा सद्व्यवहार एव सद्भाव कभी हजार गुना, लाख गुना प्रतिफल लेकर लौटता है शायद जिसकी कोई कल्पना भी नही की जा सकती।

न्यूयार्क की एक घटना है। एक सिनेमाघर की खिडकी पर टिकट के इन्तजार में खड़ी लाइन मे एक बुढिया खड़ी-खडी थक कर सहसा वेहोश होकर गिर पड़ी। उसे उठाकर मैनेजर के कमरे में लाया गया। मैनेजर ने डाक्टर को बुलाया, बुढिया की चिकित्सा करवाई। और जब उसे अपनी कार मे बैठाकर घर पहुचाने का प्रस्ताव किया तो बुढिया ने कहा—"मैं तो फिल्म देखने आई हू। इस फिल्म का कलाकार गैरी कूपर हूवहू मेरे स्व० लडके जैसा है उसे देखने से मुझे बड़ा सुख मिलता है।"

मैनेजर ने बुढिया को थियेटर घर में बैठने की अच्छी व्यवस्था करादी। धीरे-धीरे उनका सद्‌व्यवहार एव सहानुभूति दोनो को अधिक निकट ले आई। बुढिया अपने परिवार मे अकेली थी, मैनेजर का स्वभाव उसे वहुत सहायक लगा, और वह अपनी वेचैनी के दिन थियेटर घर मे फिल्म देखकर काटने लगी। कुछ समय वाद थियेटर में घाटा होने से वह बन्द होगया और मैनेजर भी अन्यत्र चला गया। करीब तीन साल के बाद एक दिन वह बुढ़िया भी मर गई। जब पुलिस ने उसके

घर की तलाशी ली और उसका वसीयतनामा देखा तो उसमे अन्य संस्थाओ को दान की लिस्ट के बाद बची हुई सब सम्पत्ति उस थियेटर के मैनेजर के नाम लिखी मिली कि–"उसने मेरे प्रति सद्भाव और सहानुभूति दिखा-कर मेरे एकाकी जीवन की नीरसता को कुछ हलका किया अत' यह सम्पत्ति उसे दी जाय।"

पुलिस ने मैनेजर की खोज की, वह किसी अन्य शहर के अस्पताल में २५० रु० मासिक पर नौकरी कर रहा था। पुलिस ने उसे सूचित किया—तुम्हारी बुढिया मित्र तुम्हे अपने ५० लाख रुपये की वसीयत दे गई है।"

सचमुच ससार मे दया, करुणा, ममता, स्नेह सद्भाव एव सद्व्यवहार कभी-कभी मानव को अचिन्तनीय सपत्ति प्रदान कर 'कल्पवृक्ष' की उक्ति को चरितार्थ कर देते है।

—●

७९

बेईमानी का कड़ा दण्ड

मानव धर्मशास्त्रकार मनु का एक वचन है– "दण्डः शास्ति प्रजाः सर्वाः दण्ड ही प्रजा पर शासन करता है।

नीतिकारो ने मानव पर अनुशासन करने वाले तीन प्रकार के भय माने है—

आत्म-भय (पाप का भय)
समाज-भय (प्रतिष्ठा का भय)
राज-भय (दण्ड का भय)

प्रथम कोटि का भय--व्यक्ति की आध्यात्मिक स्थिति का परिचायक है। दूसरा नैतिक स्तर का और तीसरा शासक के कठोर अनुशासन का।

आज देश में जो बेईमानी, मुनाफाखोरी, मिलावट-खोरी एवं तोल-माप की गड़बड़ी फैली है—इससे जन

जीवन सत्रस्त होकर गडबडा रहा है, इसका कारण है-व्यक्ति के मानस से आज तीनो प्रकार के भय समाप्त होगए है।

इतिहासकार जियाउद्दीन बारानी (अलाउदीन खिलजी का समसामयिक ६०० वर्ष पूर्व) ने लिखा हैं कि बादशाह अलाउद्दीन ने राज्य मे खाद्य-पदार्थो की मुनाफाखोरी, कम तोल-माप पर वडा कडा प्रतिवन्ध लगा दिया था। उसने खाद्य वस्तुओ के मूल्य निर्यंत्रित कर दिए थे।[1]

गेहू	७॥	जीतल	प्रतिमन
जौ	४	"	"
धान	५	"	"
नमक	५	"	२॥ मन
दाल	५	"	
चीनी	१॥	"	प्रति सेर
गुड	॥।		२॥ सेर
मक्खन	१		"

इतिहासकार फरिश्ता के अनुसार—

मिश्री	२ जीतल	प्रति सेर
घी	"	"

१, मन १४॥ सेर का, १ सेर ५ छटॉक का, और एक रुपये के ६४ जीतल होते थे।

यदि कभी कोई दुकानदार बेईमानी करता तो सरकारी कर्मचारी ठोकर मार कर उसे दुकान से हटा देते थे। यदि कोई वजन में कम चीजें देता तो वजन जितना कम होता, उतना दुकानदार की कुवड से मांस काट लिया जाना। मिलावट करने वालों को सरे आम कोड़े लगाये जाते थे। राजभय के इस कडे आतक के कारण प्रजा को खाद्यान्न का सकट कभी नही देखना पडा। राज्य में सभी वस्तुएँ सस्ती और शुद्ध प्राप्त होने लगी।[1]

१. नवनीत, फरवरी १९५८ डा० जे० एन० चौधरी का लेख।

८० | सौ दुख की एक दवा

एक सज्जन घर मे सब प्रकार से सुख के साधन होते हुए भी सदा दुखी और अप्रसन्न रहते है। जब भी उनसे बात करो, शिकायतो का पुलिदा खुल जाता है, जैसे किसी गम के फोडे पर नश्तर लगा दिया हो, उनका दुःख आँखो और वाणी के रास्ते बह निकलता है।

मैं सोचता रहता हूँ, देखता रहता हूँ और समझने की कोशिश करता हूँ कि आखिर उन्हे कमी क्या है? आज एक बात मेरी समझ मे आई, उन्हे कोई कमी नही, मगर उनके जीवन मे, उनके मन मे एक कमी है—वे सदा, जो नही है, जो दूसरो को प्राप्त है मगर उन्हे नही मिला—बस उसकी ओर अँगुली किए बैठे रहते है। यही एक कमी है। यदि वे जो मिला है, जो दूसरो को, हजारो

लाखों को नही, वह उन्हें मिला है, उस पर विचार करें जीवन के प्रति कृतज्ञ होकर सोचें तो शायद उनका समूचा दुख-दो घडी में दूर हो सकता है, और फिर वे इन्ही, स्थितियो मे कहेगे कि "मुझ-सा सुखी कोई नही है।"

जीवन एवं परिस्थितियो के प्रति कृतज्ञ होकर सोचना ही सौ दुख की एक दवा है।

—●
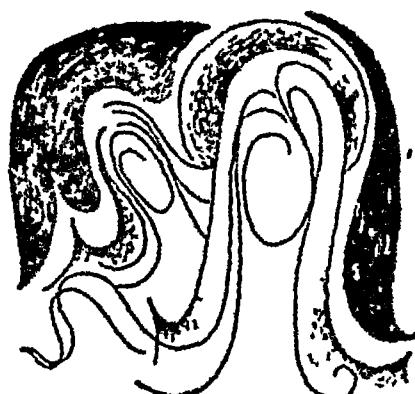
८१ | खाद्य वस्तु

एक बार चीन मे अकाल पडा। चारो ओर त्राहि-त्राहि मच गयी। स ताप-निवारण का कोई उपाय कार-गार न देख कर राजा-प्रजा दोनो महात्मा कन्फ्यूशस के पास गये। कन्फ्यूशस ने कहा—"राजन् ! खाद्य वस्तु जब व्यापार की चीज बन जाता है, तो उसका परिणाम एक न-एक दिन अकाल ही होता है।"

आज के सन्दर्भ मे यह बात कितनी सत्य हो रही है, आज खाद्य वस्तु को व्यापार की चीज ही क्या, मगर सोना कमाने की चीज मान ली गई है। और खाद्य के नाम पर कितना अखाद्य—खाद्य मे मिलावट कर जनता के पेट मे पहुचाया जाता है इसका कोई ठिकाना नही ! दूध मे पानी, खाद्य तेल मे अखाद्य तेल और गेहू मे ककर, चावल

दाल आदि में पत्थर व पत्थर का पाउडर तो मिलावट की सामान्य बात हो गई है, मिट्टी के तेल में भी पानी मिलाया जाता है, और जीवन-मरण की घड़ी में काम आने वाली दवाओ में–इन्जेक्शन की सीसी मे केवल पानी, और दवा के नाम पर किसी रगीन मिट्टी का पाउडर। हृदय को उद्वेलित कर डालने वाली इस मिलावट खोरी का मूल है—महात्मा कन्फ्यूशस के इसी वचन में—"खाद्य वस्तु जब व्यापार की चीज बन जाती है"—और आज तो वह जीवन की जरूरत नही, धन कमाने की वस्तु मान ली गई है, यही है मानव की दिग्-मूढता।

मुनिश्री जी के साहित्य पर

विद्वानों के महत्वपूर्ण अभिप्राय

आधुनिक विज्ञान और अहिंसा

—लेखक : गणेशमुनि शास्त्री, साहित्यरत्न
—भूमिका : विद्वद्वर्य मुनि कांतिसागर जी
—प्रकाशक : आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली-६
—मूल्य : तीन रुपये पचास पैसे.

❂विज्ञान और अहिंसा दोनो ही बडे जटिल विषय है, फिर भी इन्हे जिस सरल और आकर्षक रूप मे उपस्थित करने का विद्वान लेखक ने प्रयास किया है, वह श्लाघनीय है. .... कम से कम शब्दो मे अधिक से अधिक जानकारी देने का उपक्रम, पुस्तक की अपनी विशेषता है, तभी तो लेखक ने 'प्राकृतिक और आध्यात्मिक' से प्रारम्भ कर 'विश्वशान्ति और अहिंसा', 'सयुक्त राष्ट्रसघ' तथा 'अहिंसा की सार्वभौम शक्ति' आदि अनेक विषयो की चर्चा की है........प्रस्तुत पुस्तक अहिंसा सम्बन्धी विचारो की निर्माण दिशा मे अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होगी, ऐसा मेरा विश्वास है, भाषा प्रवाहशील है, सरस है, छपाई, सफाई, गेटअप आकर्षक है।

—उपाध्याय अमरमुनि

❂'आधुनिक विज्ञान और अहिंसा' मे श्री गणेशमुनि शास्त्री ने वर्तमान जीवन और जगत की विभीषिकाओ पर दृष्टि केन्द्रित

करते हुए अपने अनुभवो द्वारा विज्ञान और आध्यात्मिक संस्कृति का समन्वयात्मक अध्ययन सरलतापूर्वक प्रस्तुत कर रुचिशील पाठको का ज्ञान मवर्धन किया है, विज्ञान जैसे बहिर्जगत् से संबद्ध विषय से लेकर धर्म, अहिसा और दर्शन जैसे आध्यात्मिक जीवन-प्रेरक तत्त्वो से सम्बन्ध स्थापित कर धर्म और समाज की जो सेवा की है, वह स्तुत्य है।

—मुनि कातिसागर

'आधुनिक विज्ञान और अहिंसा' एक आदर्श कृति है। युवक क्रान्तदर्शी सन्त श्री गणेशमुनि शास्त्री का प्रस्तुत उपक्रम आधुनिक युग की साहित्य सर्जना मे बेजोड है।

—'श्रमण' वाराणसी

विज्ञान और वैज्ञानिक प्रणालियाँ मानवता द्वारा अहिंसा का मार्ग सरलता से अपनाने मे किस प्रकार सहायक हो सकती है, इस विषय मे श्री गणेश मुनिजी के जो विचार हैं, वे जनता के सही मार्गदर्शन मे उपयोगी सिद्ध होगे।

—डा दौलतसिह कोठारी
अध्यक्ष विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, दिल्ली

'आधुनिक विज्ञान और अहिंसा' के लेखक मुनिराज को न केवल विज्ञान मे ही रुचि है, अपितु धर्मशास्त्रो के साथ-साथ वैज्ञानिक साहित्य का भी सुन्दर अध्ययन है। प्रस्तुत कृति भावी अहिंसा विश्वविद्यालय के विद्यार्थियो के पाठ्यक्रम मे उपयोगी सिद्ध होगी।

—डा. डी. वी. परिहार

गणेश मुनि शास्त्री की 'आधुनिक विज्ञान और अहिंसा' पुस्तक देखी, पढ़ी—आद्य से इति तक वस्तुतः यह मुनिश्री की एक सुन्दर एव मौलिक कृति है। प्रसन्नता और बधाई!

—सुरेश मुनि, शास्त्री

पुस्तक की छपाई, गेटअप आदि काफी आकर्षक बन पडे है, पुस्तक का केवल जैन जगत मे ही नही, वरन् जैनेतर जगत् मे भी स्वागत होगा। हमारे राजनीतिज्ञो के लिए यह पुस्तक पथ-प्रदर्शक का कार्य करेगी। लेखक और प्रकाशक दोनो ही बधाई के पात्र है।

—'ललकार'

१६ अगस्त, १९६२ जोधपुर

यदि प्रस्तुत पुस्तक को प्रयत्न करके किसी पाठ्यक्रम में निश्चित करा दिया जाय, तो जनता का अधिक लाभ होगा, पुस्तक सर्वरूपेण पठनीय है।

—'जिनवाणी'

जयपुर (राजस्थान)

साथ अहिंसा के अगर,
हो पढना विज्ञान।
पाठक! पढिये प्यार मे,
यह पुस्तक गुण-खान।
सरल सरस फिर सारयुत,
कृति ऐसी नहिं अन्य।
मुनि 'गणेश' शास्त्री-गुणी,
जी को शतश धन्य!

—चन्दन मुनि [पंजाबी]

नोट :—

प्रस्तुत पुस्तक की सुन्दर समीक्षा दैनिक समाचार पत्रो के अतिरिक्त 'रेडियो स्टेशन' दिल्ली से भी समीचीन समीक्षा हो चुकी है।

अहिंसा की बोलती मीनारें

—लेखक : गणेश मुनि, शास्त्री साहित्य रत्न

—भूमिका : यशपाल जैन, दिल्ली

—प्रकाशक · सन्मति ज्ञान पीठ, आगरा-२

—मूल्य चार रुपये,

आज सब ओर प्रेम, करुणा और बन्धुता के स्थान पर आशका, भय और अविश्वास का बोलबाला है। ये सब शान्ति के लिए खतरे है, जिनसे त्राण पाने का यदि कोई अमोघ अस्त्र है, तो वह अहिंसा ही है। जहा अहिंसा है, वहा जीवन है और जहा अहिसा का अभाव है, वहा जीवन का अभाव है। इस पुस्तक मे अहिंसा की इसी विराट् और व्यापक शक्ति का ऐतिहासिक, सैद्धान्तिक और व्यावहारिक दृष्टि से सूक्ष्म विवेचन किया गया है। पुस्तक सात खण्डो मे विभक्त है और प्रत्येक खण्ड को 'बोलती मीनार' की सज्ञा दी गई है। प्रथम खण्ड मे अहिंसा के आदर्श को समझाते हुए, विराट् दृष्टि और विभिन्न मतो मे उसका निरुपण किया गया है .. दूसरे अध्याय मे सामाजिक हिसा के विचित्र रुप शोषण, दहेज आदि की चर्चा करते हुए बताया गया है कि मानव जाति एक है...,तीसरे खण्ड

मे अपरिग्रहवाद की विस्तार से चर्चा की है....चौथे और पाचवे अध्याय मे अहिंसा के बुनियादी सिद्धान्त अनेकान्तवाद और शाकाहार की चर्चा की गई है। छठे खण्ड मे रेडियो सक्रियता आणविक शक्ति, अणु-परीक्षण आदि का उल्लेख करते हुए यह बताया गया है कि विज्ञान पर अहिंसा की विजय किस प्रकार होती जा रही है और उसका समन्वय कैसे हो सकता है। अन्तिम सातवे खण्ड मे अहिंसा और विश्व शान्ति जैसे ज्वलंत प्रश्न पर विभिन्न शीर्षको के अन्तर्गत विस्तार से चर्चा करते हुए इस दिशा मे भारत के योगदान की चर्चा की गई है।

पुस्तक मे अहिंसा के सैद्धान्तिक और व्यावहारिक पक्ष पर काफी सुपाठ्य सामग्री दी गई है। भाषा सरल सुबोध और शैली इतनी रोचक है कि सीमित ज्ञान रखने वाले व्यक्ति भी इसे आसानी से समझ सकते है। गेटअप और छपाई की दृष्टि से भी पुस्तक अच्छी और विषय वस्तु के कारण तो सग्रहणीय है ही।

—दैनिक हिन्दुस्तान

४ जनवरी १९७०, दिल्ली।

❂ प्रस्तुत पुस्तक मे विद्वान लेखक ने अहिंसा की व्यावहारिक पृष्ठभूमि को ध्यान मे रखते हुए, उसके विभिन्न अगो का विशद विवेचन किया है। इसे पढकर अहिंसा की तेजस्वी शक्ति का सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है।

पुस्तक सात खण्डो मे विभक्त है। पहले खण्ड मे उन्होंने अहिंसा के आदर्श को समझाया है। दूसरे मे मानव जाति एक है, इसको स्पष्ट किया है। तीसरे मे अहिंसा की साधना का ढंग

वताया गया है। इसी खण्ड मे अपरिग्रहवाद की विस्तार से चर्चा है। वाद के चार अध्यायो मे सरल सुस्पष्ट भाषा मे अहिसा के बुनियादी सिद्धान्तो का विवेचन प्रस्तुत है। अहिंसा और विज्ञान के समन्वय पर भी बल दिया गया है। अन्त मे अहिसा एव विश्व शान्ति के ज्वलन्त प्रश्न पर विचार किया गया है।

पुस्तक कई दृष्टियो से पठनीय, चिन्तनीय एव सग्रहणीय है। आशा है कि साहित्यिक जगत मे यह पूर्ण सम्मानित होगी।

—नवभारत टाइम्स, १४ दिसम्बर १६६६, वम्वई

अहिसा की व्यावहारिक पृष्ठभूमि को स्पर्श करते हुए उसके विभिन्न अंगो का विशद विवेचन श्री गणेश मुनिजी शास्त्री ने प्रस्तुत पुस्तक मे किया है। अहिसा के सम्वन्ध मे लेखक निष्ठा-वान है और साथ ही व्यावहारिक बुद्धि से युक्त भी। अध्ययन एव अनुभव के आधार पर की गई उसकी विवेचना अहिसा मे निष्ठा रखने वाले प्रत्येक पाठक के लिए उपयोगी सिद्ध होगी, ऐसा मेरा दृढतम विश्वास है। —उपाध्याय अमरमुनि

अपने बहुत-से लेखो तथा भाषणो मे मैने इस वात पर जोर दिया है कि हमे सरल, सुवोध भाषा मे कुछ ऐसी पुस्तके तैयार करनी चाहिए, जो सामान्य बुद्धि और सीमित ज्ञान रखनेवाले व्यक्तियो की भी समझ मे आ जाय और वे इन्हे पढकर जान सके कि अहिसा की शक्ति कितनी तेजस्वी है और उन पर

आचरण करके किस प्रकार राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय जीवन जगत मे स्थायी शान्ति और सुख स्थापित किया जा सकता है। इस दृष्टि से प्रस्तुत पुस्तक को देखकर मुझे हार्दिक प्रसन्नता हुई। इसके लेखक जैन मुनि हैं और इन्होने अहिंसा तथा सम्बन्धित सभी विषयो का सूक्ष्म अध्ययन एव चिन्तन किया है।

—यशपाल जैन, देहली

श्री गणेश मुनिजी शास्त्री की अहिंसा की बोलती मीनारे अहिंसा का आधुनिक शास्त्र है। इसे अहिंसा की गीता कहे, तो कोई अतिशयोक्ति नही है।

—साध्वी उज्ज्वलकुमारी

'अहिंसा की बोलती मीनारे' के द्वारा कृष्ण के प्रेम को, महावीर की अहिंसा को, गाधीजी की सत्याग्रहवादी भाषा को लेखक ने नवयुग की चेतना के समक्ष बडी सजधज के साथ रखा है।

——विजय मुनि शास्त्री

पुस्तक मे सर्वत्र लेखक की सूझ-बूझ और चिन्तन पूर्ण अनुभूतियो का दिग्दर्शन होता है। ऐसी उपयोगी पुस्तक प्रकाशन के लिए लेखक एव प्रकाशक को बधाइयाँ।

—अजित शुकदेव

अहिंसा के विभिन्न पहलुओ को लेकर प्राञ्जल शैली मे लिखी गई यह कृति सर्वोपयोगी है।

—मुनि नेमीचन्द्र

✲ आज के भयाक्रान्त विश्व को निर्भयता की ओर ले जाने मे यह पुस्तक पूर्णसहायक बनेगी, ऐसा मेरा विश्वास है ।

—प्रवर्तक मुनि मिश्रीमल

✲ ऐसा श्रम साध्य तथा महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ यदि किसी उच्चस्तरीय परीक्षा के पाठ्यक्रम मे स्वीकृत हो जाय, तो समाज का अधिक हित हो सकता है ।

—प्रवर्तक विनयऋषि

✲ 'अहिंसा की बोलती मीनारें' मे लेखक ने अहिंसा का शास्त्रीय चिंतन प्रस्तुत करते हुए उसके व्यावहारिक, आध्यात्मिक और विविध मतो की दृष्टि से सामाजिक मूल्यो पर भी सुन्दर प्रकाश डाला है। भाव-भाषा दोनो ही दृष्टियो से पुस्तक सुन्दर से सुन्दरतर है।

—आचार्य मुनि हस्तिमल

✲ वर्तमान विचार द्वन्द्व की काली निशा मे मुनि श्री का प्रस्तुत ग्रन्थ 'अहिंसा की बोलती मीनारे' प्रकाश स्तंभ वनकर विश्व को सही मजिल की दिशा सुझायेगा, ऐसा विश्वास है।

—मालवकेशरी मुनि सौभाग्यमल

✲ पुस्तक क्या है ? वर्तमान देश, समाज व राष्ट्र की विभिन्न समस्याओ का उचित समाधान ! राकेटवादी युग का प्रकाश स्तम्भ ! प्रत्येक मीनार का विषय बडा ही रोचक, दिलचस्प एवं ज्ञानवर्धक है।

—प शोभाचन्द्र भारिल्ल

☼ आज के युग को अहिंसा का बोध देने वाला यह एक सुसंस्कृत संयोजन है।

—मधुकर मुनि

☼ छपाई, सफाई और सामग्री की दृष्टि से यह प्रकाशन निःसंदेह अनुपम व उपयोगी है।

—सौभाग्य मुनि 'कुमुद'

पुस्तक क्या है ? दुर्लभ मोती,
हीरे लालों का इक कोष।
हर इक शब्द अहिंसा माँ की,
महिमा का करता उद्घोष।
पढ-सुन जिसे हजारों लाखों,
पार करेंगे भवसागर।
गुणी 'गणेश' मुनीश्वरजी का,
ग्रन्थरत्न यह रहे अमर।

—चन्दन मुनि (पंजाबी)

विचार रेखा

—सम्पादक : गणेश मुनि शास्त्री, साहित्यरत्न
—प्रेरक : श्री जिनेन्द्र मुनिजी
—प्रकाशक : अमर जैन साहित्य सदन, जोधपुर
—मूल्य : एक रुपया पचास पैसे

☼ प्रस्तुत पुस्तक छः अध्यायों में विभक्त वह उद्यान है, जिसमें अहिंसा, अस्तेय, संतोष, संयम, प्रेम, हर्ष, सुख, दुःख, क्षमा आदि विभिन्न विचारों के सुमन खिले हैं, आशा है, जीवन में

इनकी सुरभि मिलती रहेगी। पुस्तक सग्रह और मनन के लायक है। मुनि श्री की इस सुन्दर कृति का सर्वत्र स्वागत हो यही हमारी मगल कामना है।

—श्रमण, वाराणसी

☸ 'विचार रेखा' महापुरुषो की दिव्यवाणी एव गंभीर विचारको के विचारो का श्रेष्ठ सग्रह है, मानव जीवन के लिए प्रकाश स्तभ है। —विजय मुनि शास्त्री

हाथ मे उठा जो देखा, विचित्र 'विचार रेखा',
सबमे निराला लेखा, कविता न गीत है।
अनमोल हीरे पर, ढग से दिये हे धर,
जौहरी का जैसा घर, पावन-पुनीत है।
ज्ञानी-ध्यानी महागुणी, पडित 'गणेश मुनि',
हर बात ऐसी चुनी, जीवन की जीत हे।
ज्ञानियो के, गुणियो के, ऋषियो के, मुनियो के,
विविध विचारो का ही यह नवनीत है।

—चन्दन मुनि [पंजाबी]

☸ मेरे स्नेही साथी गणेशमुनि शास्त्री द्वारा सग्रहीत 'विचार रेखा' एक सुन्दर संकलन है, साधना पथ का ज्योतिर्मय दीप-स्तम्भ है। —मुनि समदर्शी 'प्रभाकर'

☸ रूप-रग, साज-सज्जा तथा सामग्री की दृष्टि से 'विचार रेखा' एक उत्तम कृति है, ऐसी उत्तम कृति का साहित्य जगत मे स्वागत होना ही चाहिये। —डा नृसिहराज पुरोहित

इन्द्रभूति गौतम : एक अनुशीलन

—लेखक : गणेश मुनि शास्त्री, साहित्यरत्न

—संपादक : श्रीचन्द सुराना 'सरस'

—भूमिका : डा जगदीशचन्द्र जैन

—प्रकाशक : सन्मति ज्ञानपीठ, आगरा-२

—मूल्य : चार रुपये,

प्रस्तुत प्रबन्ध मे गणधर इन्द्रभूति गौतम के विराट् व्यक्तित्व की यथार्थ तसवीर खीची गई है। आज तक की साहित्यिक अपूर्णता को यह कृति पूर्ण कर रही है।

इस प्रबन्ध के लेखक है—श्रद्धेय पण्डित प्रवर श्री पुष्कर मुनि जी म. के शिष्यरत्न श्री गणेश मुनि जी शास्त्री, श्री गणेश मुनि जी जैन समाज के एक अनेक पहेलु वाले जगमगाते जवाहिर हैं। वे कवि भी है और कलाकार भी हैं। गायक भी है और साधक भी हं। और वे क्या नही है, यह एक प्रश्न है ?

आप इस प्रबन्ध के लिए अपनी साधु समाज मे 'डाक्टरेट" के प्रथम विजेता बने, यही मनीषा।

— साध्वी उज्ज्वल कुमारी

श्री गणेश मुनि जी शास्त्री की 'इन्द्रभूति गौतम : एक अनुशीलन' पुस्तक पढी। ग्रन्थ बहुत अध्ययनपूर्ण एवं सुन्दर शैली मे लिखा गया है..... यदि वे सुधर्मास्वामी पर भी इसी तरह का एक शोध प्रबन्ध तैयार करे तो समाज की बड़ी सेवा होगी।

—साहित्यवारिधि अगरचन्द नाहटा

✡ विद्वान लेखक को इस 'थीसिस' पर 'डाक्टरेट' मिलनी चाहिए और उन्हे विशेष पद से विभूषित किया जाना चाहिए।

इस अनुपम कृति के उपलक्ष मे मैं ज्ञानयोगी श्री गणेश मुनि जी का तथा सम्पादक बन्धु का और उनके भाग्यशाली पाठको का हार्दिक अभिनन्दन करता हूँ।

—नारायण प्रसाद जैन, बम्बई

✡ प्रस्तुत पुस्तक मे विद्वान लेखक एव सम्पादक ने 'इन्द्रभूति' के उस महामहिम शब्दातीत रूप को शब्दगम्य बनाने का स्तुत्य प्रयत्न किया है। पुस्तक का सरसरी तौर पर अवलोकन कर जाने पर मुझे लगा है—गौतम के व्यक्तित्व की गहराई को श्रद्धा एव चिन्तन के साथ उभारने का यह प्रयत्न वास्तव मे ही प्रशसनीय है तथा एक बहुत बडे अभाव की सपूर्ति भी।

ऐसे अनुशीलनात्मक विशिष्ट ग्रन्थो से पाठको की ज्ञानवृद्धि के साथ तत्त्वजिज्ञासा की परितृप्ति होगी—ऐसा विश्वास है।

—उपाध्याय अमर मुनि

✡ प्रस्तुत समीक्षा कृति 'इन्द्रभूति गौतम : एक अनुशीलन' श्री गणेश मुनि शास्त्री द्वारा लिखी गई है, जिसमे गौतम सबधी विभिन्न चर्चाएँ हुई हैं। विद्वान लेखक ने नाति दीर्घ पुस्तक मे ही इन्द्रभूति गौतम के सम्बन्ध मे गहराई से विचार किया है और उनके विद्वत्तापूर्ण असाधारण व्यक्तित्व को प्रथम बार प्रकाश मे लाने का स्तुत्य प्रयास किया है। वस्तुत: लेखक का यह शोधपूर्ण प्रयास जैन चिन्तन के क्षेत्र मे महार्घ माना

जायेगा.... . पुस्तक की भाषा साफ-सुथरी, प्रवाहपूर्ण और आकर्षक है, लेखन शैली पिच्छिल और मनोज्ञ—संक्षेप में, पुस्तक शोध-पूर्ण, नये चिन्तन को बल देने वाली और ऐतिहासिक सदर्भ को उत्साहित करने वाली है।

—'श्रमण' वाराणसी

❋ उदीयमान तेजस्वी लेखक श्री गणेश मुनिजी शास्त्री ने प्रस्तुत ग्रन्थ मे 'इन्द्रभूति गौतम' की जीवनी अत्यन्त रस के साथ प्रस्तुत की है, जिसके लिए वे अभिनन्दन के पात्र है।

—दुर्लभजी खेताणी घाटकोपर, बम्बई

❋ 'इन्द्रभूति गौतम : एक अनुशीलन' को पढने से ज्ञात हुआ कि यह एक थीसीस (महानिबंध) है, इस प्रकार की पुस्तक लिखने वालो को विश्वविद्यालय की ओर से पी. एच-डी. की उपाधि से विभूषित किया जाता है, प्रस्तुत ग्रन्थ के लेखक श्री गणेश मुनि जी शास्त्री भी पी. एच-डी की उपाधि के योग्य अधिकारी है।

—विनय ऋषि
अहमदनगर (महाराष्ट्र)
१५-२-१९७१

गौतम गणधर शिष्य थे, महावीर के खास,
अब तक उनका न लखा, हिन्दी मे इतिहास।
ज्ञानी गुणी 'गणेशजी', शास्त्री सुलझे सन्त,
'इन्द्रभूति-गौतम' लिखा, अद्भुत अनुपम ग्रन्थ।

गुरुवर 'पुष्कर' है जिन्हे, मिले महा गुण खान।
उनकी हो न क्यो कहो, कृतिया आलीशान।
जैसा लेखन उच्च है, है सम्पादन उच्च,
भाव भरा मुख पृष्ठ औ, सर्व प्रकाशन उच्च।
गहन मनन अध्ययन औ, चिन्तन देख विशाल,
है अभिनन्दन कर रहा. गद् गद् 'चन्दनलाल'।

—चन्दन मुनि

वाणी-वीणा

—कवयिता : गणेश मुनि शास्त्री, साहित्यरत्न
—सम्पादक : श्रीचन्द सुराना 'सरस'
—भूमिका · डॉ पारसनाथ द्विवेदी, आगरा
—प्रकाशक . अमर जैन साहित्य सदन, जोधपुर
—मूल्य. दो रुपये पचास पैसे

'वाणी-वीणा' जीवन की सात्विक प्रवृत्तियो की अभिव्यक्ति का काव्यात्मक स्वरूप है, आज के युग वैषम्य और कुण्ठाओ मे पल रहे समाज के लिए इस प्रकार का सगीतात्मक-प्रेषण प्रेरणाप्रद हो सकता हे, समभाव, मैत्रीदिवस, प्रेममत्र, धार्मिकता, अहिंसा आदि जैनधर्म से सम्मत उदात्त प्रवृत्तियो पर सुन्दर काव्यात्मक पक्तियां प्रस्तुत की गई है—जो लेखक के चिन्तन, मनन व अनुभूति की सात्विकता का पोषण करता है, कवि की इस मानवतावादी दृष्टि मे ही वीणा का वैशिष्ट्य निहित है।

—नवभारत टाइम्स, मार्च १९७० बम्बई

✻'वाणी-वीणा' को पढकर हृदय आनन्द की तरगों मे डूबने लगता है और लगता है कि हम गगा की पावन धारा मे एक बजरे के ऊपर बैठे हो, आज के युग मे ऐसी पुस्तको की पहले से अधिक आवश्यकता है।

—विश्वम्भर 'अरुण'

वाणी वीणा पढ़ मन मेरा, आनन्द से भर आया,
हर पद के गुन्जन मे देखी, पन्त निराला की छाया।
स्वागत है कविराज तुम्हारा काव्य क्षेत्र मे तुम चमके,
नीलगगन मे दिनकर के सम, दिन-दिन जगती पर दमके।

—साध्वी उज्ज्वलकुमारी

✻'वाणीवीणा' किसी सम्प्रदाय विशेष का स्वर नही, बल्कि सच्ची निष्ठा के साथ मानवीय कर्तव्य धर्मों का स्वर सधान है, जीवन जगत के श्रेयस की पकड़ है।

—डॉ. पारसनाथ 'द्विवेदी'

✻'वाणी-वीणा' मुक्तक रत्नो से सुसज्जित सुन्दर हार सी एक मौलिक कृति है, जो साहित्य मूर्ति के कण्ठाभरण सी प्रतीत होती है।

—मुनि कुमुद

✻'वाणी-वीणा' मे कविवर श्री गणेश मुनि शास्त्री ने जीवनोपयोगी-मुक्तक काव्यो की भव्य रचना की है....! सरस्वती के

भण्डार मे यह पुस्तक अपना एक विशिष्ट स्थान रखती है, कवि की कल्पना मधुर है, भाषा प्राजल है और शैली प्रभावमयी है, आशा है कि प्रत्येक अध्येता 'वाणी-वीणा' से प्रेरणा प्राप्त कर अपने जीवन को प्रशस्त बनाने का यत्न करेगा।

—विजय मुनि, शास्त्री

'वाणी-वीणा' का हर मुक्तक,
मुक्ति दिखाने वाला है।
दर्द भरी इस दुनिया को—
सुरधाम बनाने वाला है।
भूले भटके मानवगण को,
दानवता से दूर हटा।
मानवता का मधुर-मधुर शुभ—
पाठ पढाने वाला है।
क्यो न कहो, बधाईया दे हम,
गुणी 'गणेश' मुनीश्वर को।
बन्द जिन्होने कर दिखलाया,
गागर मे ही सागर को।
दीक्षित-शिक्षित कर, पर जिनने
इनको योग्य बनाया है।
प्रसन्न बधाईया देते है हम,
पूज्य मुनीश्वर पुष्कर को।

—चन्दन मुनि [पंजाबी]

महक उठा कवि सम्मेलन

—कवयिता : गणेश मुनि शास्त्री-साहित्यरत्न

—प्रकाशक : अमर जैन साहित्य सदन, जोधपुर

—मूल्य : एक रुपया पचास पैसे

'महक उठा कवि सम्मेलन' एक से एक मुक्तकों की भीनी सुरभि से महक रहा है, कवि ने अपने इन तमाम मुक्तकों में कमाल की सूझ भरदी है। व्यगोक्ति के मर्म को छूनेवाली व्यजना, लाक्षणिकता की विपुल-बहुल शृंखला कल्पना की उर्वर भूमि पर युगबोध का सम्यक् समाहार उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा आदि अलकारो का चमत्कार एव भावो को जन-मन तक पहुचाने वाली भाषा का सरल सरस प्रवाह पद-पद पर छलकता नजर आता है।

...... मुक्तक काव्य परम्परा मे प्रस्तुत पुस्तक सदा सम्मान की दृष्टि से याद की जाएगी।

—श्री अमर भारती

'महक उठा कवि-सम्मेलन' आधुनिक युग के समर्थ चिंतक कविरत्न श्री गणेश मुनिजी शास्त्री की एक मौलिक कृति है। इसमे कुछ तुक्तक-मुक्तक ऐसे है, जिन्हे देखते ही जिह्वा झूम-झूम कर गुनगुनाने लगाती है। काव्य-जगत मे मुनिश्री की प्रस्तुत कृति एक नयी अभिव्यञ्जना सिद्ध होगी।

—साध्वी उज्ज्वलकुमारी

✠'भाव भाषा और शैली तीनो दृष्टियो से पुस्तक सुन्दर एवं सग्रहणीय है। इसमे कविवर श्री गणेश मुनि शास्त्री के विचार और अनुभूति का सुन्दर समन्वय प्रस्तुत हुआ है।

—विजय मुनि, शास्त्री

'महक उठा कवि सम्मेलन' जब,
पुस्तक जरा उठा देखी।
फुलझडियाँ देखी मुक्तक की तो,
मन की अजब अदा देखी।
गुणी 'गणेश' मुनीश्वर जी की,
लखा लेखनी चकित हुआ।
ऐसी सुलझी अन्य कही पर,
कम ही काव्य-कला देखी।

—चन्दन मुनि [पजाबी]

✠'महक उठा कवि सम्मेलन' के मुक्तक आकार की दृष्टि से छोटे है, किन्तु मानव के मन-मस्तिष्क को प्रभावित करने एव जीवन को नया मोड देने मे ये अणु से भी कम शक्तिशाली नही है। ये मानव मन पर जादू-सा असर करने वाले है।

छपाई-सफाई, आकार-प्रकार तथा कलापूर्ण आवरण पृष्ठ अत्यधिक आकर्षक है।

—मुनि समदर्शी

✠ऐसी सुन्दर प्रभावोत्पादक कृति के लिए कवि को हृदय की गहराई से बधाई।

—महेन्द्र मुनि 'कमल'

सुबह के भूले

—लेखक : गणेश मुनि शास्त्री साहित्यरत्न

—सम्पादक : जीतमल सकलेचा एम. ए.

—प्रकाशक अमर जैन साहित्य संस्थान, उदयपुर

—मूल्य . स त रुपये

पुस्तक की भाषा-शैली प्रवाह पूर्ण और प्रभावशाली है। "रसात्मकम् वाक्यं काव्य" की अनुभूति रचना को पढ़ते समय क्षण-क्षण होती रहती है। शब्दो का सुन्दर संयोजन, वाक्यो का सुगठित स्वरूप और अभिव्यक्ति की स्वच्छता रचनाकार की मौलिक शिल्प-चेतना का प्रत्यक्ष उदाहरण है। मुझे विश्वास है कि प्रस्तुत उपक्रम जैन-संत-काव्य परम्परा का वे जोड़ रत्न साबित होगा और आधुनिक युग के यान्त्रिक मानव- समाज को आध्यात्मिक शान्ति का सुन्दर उपहार देगा। मुनि जी लालित्य-पूर्ण साहित्य-सर्जना के लिए बधाई के पात्र हैं।

—डॉ. रामप्रसाद त्रिवेदी
प्राध्यापक : आर. के. तलरेजा कॉलेज
उल्हास नगर—३ [महा.]

श्री गणेश मुनि जी जैन समाज के चिन्तनशील कवि और विद्वान गवेषक सन्त है। 'अहिंसा की बोलती मीनारें', 'इन्द्रभूति गौतम : एक अनुशीलन' आदि कृतियो मे उनका गवेषक पण्डित रूप प्रकट हुआ है। प्रस्तुत कृति 'सुबह के भूले' मे उनका सरस कवि-रूप उभर कर सामने आया है। ....संकलन की सभी

कविताये कथा की अलगनी पर टिकी हुई है। उनमे वर्णनो की चित्रोपम छटा और भावो की रगीली मर्मस्पर्शिता है। कथा-प्रेमियो और कविता प्रेमियो के लिए यह कृति परितोपकारी है।

मै इस सुन्दर कविता-संकलन के लिए मुनि श्रीजी का सादर अभिनन्दन करता हूँ।

—डॉ० नरेन्द्र भानावत

प्राध्यापक—हिन्दी विभाग राजस्थान विश्वविद्यालय

श्री गणेश मुनि जी शास्त्री जैन-जगत के एक उदीयमान सुयोग्य लेखक व सरस कवि है।

"आधुनिक विज्ञान और अहिसा", "अहिसा की बोलती मीनारे" व "इन्द्रभूति गौतम एक अनुशीलन" आदि कलाकृतियाँ मुनिजी की अतीव प्रशंसनीय रही है। प्रस्तुत रचना भी मुनिजी की एक सुन्दरतम कलाकृति है। अन्य रचनाओ की तरह मुनिजी की यह रचना भी अतीव आदर पायेगी ऐसा मेरा विश्वास है।

इस रचना के लिए मेरा शतश अभिनन्दन है मुनिजी को।

—मधुकर मुनि

जीवन के अमृतकण

—लेखक · गणेश मुनि शास्त्री, साहित्यरत्न

—सम्पादक श्रीचन्द सुराना, 'सरस'

—प्रकाशक अमर जैन साहित्य सस्थान, उदयपुर

—मूल्य : दो रुपये पचास पैसे

❂ "जीवन के अमृत कण" पुस्तक को पढकर मन आनन्दविभोर हो उठा, सचमुच एक-एक अमृत कण के रसास्वादन से जीवन मे अपूर्व जागृति, चेतना और प्रेरणा की बाढ आरही है।

—महासती उज्ज्वलकुमारी

❂ "जीवन के अमृत कण" मानव मे रही हुई, अन्तरग अशान्ति को दूर हटाकर शान्ति प्रदान करने वाली एक सुन्दर कृति है। इस अमृत कणो के खजाने मे मे एक-एक अमृत कण निकाल कर मानव अध्यात्म शान्ति का अनुभव कर सकता है। प्रस्तुत पुस्तक के लेखक राजस्थान केसरी प० श्री पुष्कर मुनिजी म के सुशिष्य कविवर्य साहित्य सर्जक पण्डित मुनि श्री गणेश मुनि जी है। वे अनेक साधुवाद के पात्र हैं।

—प्रवर्तक विनय ऋषि

गीतों का मधुवन

—रचयिता : गणेश मुनि शास्त्री
—प्रकाशक · अमर जैन साहित्य सदन, जोधपुर

मूल्य एक रुपया

शब्दावलियाँ सरस सब,
शिक्षा और कमाल।
'गीतो का मधुवन' लगा,
गद गद 'नन्दनलाल'।

२३

'मुनि गणेश' भारी, गुणी,
सरस्वती अवतार।
निशदिन ही जिनकी रहे,
झंकृत गीत सितार।
—चन्दन मुनि [पंजाबी]

इसके अतिरिक्त मुनि श्री की कई महत्वपूर्ण रचनाएँ अमुद्रित है। समय और सुविधा के अनुसार वे भी पाठको के कर कमलो मे पहुँच सकेगी, ऐसा विश्वास है।

शीघ्र प्रकाशित होने वाला साहित्य

- विचारदर्शन
- भ. महावीर के हजार उपदेश
- भगवान महावीर और विश्व शान्ति

पुस्तक प्राप्तिस्थल .

१ लक्ष्मी पुस्तक भण्डार
गाधी मार्ग, अहमदाबाद-१

मन्त्री
२. अमर जैन साहित्य सस्थान
कॉरपोल, उदयपुर (राजस्थान)

मुनिश्री जी की महत्त्वपूर्ण रचनाएँ

१. आधुनिक विज्ञान और अहिंसा
२. अहिंसा की बोलती मीनारें
३. इन्द्रभूति गौतम : एक अनुशीलन
४. प्रेरणा के बिन्दु
५. विचार दर्शन
६. वाणी वीणा
७. महक उठा कवि सम्मेलन
८. विचार रेखा
१०. जीवन के अमृत कण
११. धरती के फूल
१२. प्रकृति के अंचल मे
१३. तब और अब
१४ सुबह के भूले
१५. अनगूंजे स्वर
१६. गीतो का मधुवन
१७. सगीत-रश्मि
१८. गीत झंकार
१९. गणेश गीताञ्जलि
२०. गीत गुञ्जार (सम्पादित)
२१. नूतन संगीत